परिवर्तन

सुदर्शन

परिवर्तन

[एक भावपूर्ण और मनोरंजक कहानी]

लेखक

श्रीयुत सुदर्शन

—:०:—

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

द्वितीयावृत्ति] १९३७ [मूल्य ।।)

विचित्र प्रकृति ने वशीकरण मन्त्र के समान मेरे हृदय को प्रेम में बाँध लिया। सोचता था यदि किसी प्रकार इससे परिचय हो जाय, तो मैं सारा सारा दिन इसी के पास बैठा रहूँ। यह मेरी सब से बड़ी लालसा थी। इँग्लेंड में रहने के कारण पश्चिमी सभ्यता का विचार हो गया था, नहीं तो भारतीय लोग दिखावे के इतने पाबन्द कभी नहीं हुए। परन्तु वह मनुष्य अतिशय एकान्तवासी और मितभाषी था। जहाज़ के अन्य यात्री एक दूसरे के मित्र बन गये थे और दिन रात एक साथ खेलते रहते थे, परन्तु वह सदैव अपने ही कमरे में पड़ा रहता था। वह अँगरेज़ था, परन्तु उसकी पोशाक हिन्दुस्तानियों की सी थी। वह इस पोशाक में देवता-तुल्य प्रतीत होता था। यह वेश मैंने लाखों मनुष्यों के तन पर देखा है, परन्तु उस अँगरेज़ की सी सुन्दरता मैंने किसी और मनुष्य में नहीं देखी। मैं स्वयं फ़ैशन का पुजारी हूँ, परन्तु उस अँगरेज़ की सादगी पर मेरा मन मुग्ध हो गया। उसे देखकर मुझे स्वजातीय सभ्यता पर अभिमान होने लगता था और मैं आनन्द से झूमने लग जाता था। प्रायः अपने साथी यात्रियों से कहा करता, देखते नहीं हो, उसे हमारी ही चीज़ पसंद है। परन्तु क्यों पसंद है? यह रहस्य किसी की भी समझ में न आता था। उससे बातचीत करने की कई बार इच्छा हुई, परन्तु हर बार सभ्यता ने होंठों पर हाथ रख दिये। उस समय मैं इस नाम-मात्र की झूठी सभ्यता पर झुँझला उठता था।

उसे सामने देखा तो मेरा हृदय प्रफुल्लित हो उठा। मुस्कराकर बोला, "नहीं साहब! मैं स्वयं इस एकान्त से घबरा गया था। आपने मुझ पर उपकार किया है।"

उसने मुस्कराकर कहा, "आप कितने दयालु हैं?"

"क्या मैं आपको अपने कमरे में बुला सकता हूँ?"

"बड़ी ख़ुशी से।"

मैं और वह दोनों कमरे में गये, और बैठ कर बातें करने लगे। इस समय मुझ पर एक ऐसा रहस्य खुला, जिसकी मुझे कभी आशा न थी। मैंने पूछा, "आप कहाँ जायेंगे?"

"मुलतान।"

"तो आप वहाँ नौकर होंगे। किस महकमे में?"

अजनबी ने उत्तर दिया, "वहाँ मेरा घर है।"

"आपका घर?"

"हाँ, मेरा घर। क्या आपको आश्चर्य है?"

"वास्तव में। मैं समझता था, आप पहली बार भारत जा रहे हैं।"

"और आपका विचार ठीक है। मैंने इससे पहले भारत के तट पर कभी पाँव नहीं रखा।"

मेरा आश्चर्य और भी बढ़ गया, जिस प्रकार बादल छा जाने से रात्रि का अन्धकार बढ़ जाता है। मेरा चेहरा प्रत्यक्ष प्रश्न था।

अँगरेज़ ने हँस कर कहा, "आप मुझे क्या समझते हैं, अँगरेज़ ?"

मैंने उत्तर दिया, "और कोई कारण नहीं, कि मैं आपको कुछ और समझूँ !"

"परन्तु आप भूल रहे हैं।"

"तो—"

"मैं भारतीय हूँ।"

मैं अपने स्थान से उछल पड़ा, जैसे कोई अनहोनी बात सुन ली हो। आश्चर्य से बोला, "मैंने शहर शहर का पानी पिया है। मुझे अपने आप पर बहुत भरोसा था। कम से कम जातीयता के विषय में मैं कभी धोखा नहीं खा सकता। मैंने यूरोप के अलग अलग प्रान्तों के निवासियों को पहचानने में कभी भूल नहीं की। परन्तु यह विचार न था, कि मैं एक भारतीय को भी न पहचान सकूँगा। लज्जा ने मुँह लाल कर दिया।"

एकाएक मैंने सिर उठाया, "परन्तु आपने कहा था, कि आप भारत में पहली बार जा रहे हैं।"

"हाँ।"

"आप भारत की भाषा जानते हैं?"

"नहीं।"

मेरी ज़बान बन्द हो गई, परन्तु मेरे नेत्रों में विस्मय भरा था। थोड़ी देर के बाद मैंने पूछा, "आप भारतीय हैं, परन्तु

आपका रंग इतना लाल और सफ़ेद है। आप भारतीय हैं, परन्तु आपने भारत नहीं देखा। आप भारतीय हैं, परन्तु आप भारत की भाषा नहीं जानते। तो इससे मैं क्या समझूँ ?"

अँगरेज़ ने ठंडी साँस भरी, और कहा, "इस समय न पूछो, किसी अवकाश के समय मैं तुमसे अपनी आत्म-कथा कहूँगा।"

"नहीं अभी कहो। मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है। जब तक तुम्हारी कहानी न सुन लूँगा, मुझे चैन न आयेगा।"

वह चुप हो गया, कदाचित् सोच रहा था, कि किसी अपरिचित को इतनी जल्दी आप बीती सुना देना उचित है या नहीं। मुख का रङ्ग इसका साक्षी था। कुछ देर चुपचाप बैठा रहा। इस समय उसके हृदय में हलचल मची हुई थी। उसने क्षमा चाही—कहा, फिर किसी समय कहूँगा, इस समय रहने दो। परन्तु मेरे भारतीय आग्रह ने उसका मुँह बन्द कर दिया। विवश होकर बोला, "तुम पहले आदमी हो, जिसके सामने मैं ये घटनाएँ रखने लगा हूँ। मैं इससे पहले कई आदमियों को टाल चुका हूँ। दिखावे की दो बातें उनका जोश ठंडा करती रही हैं। परन्तु तुम्हारे हठ के सामने "न" करने को जी नहीं चाहता। मैंने सुना है तुम भारतीय समाचार-पत्रों में प्रायः लिखते रहते हो। संभव है मेरी कहानी तुम्हें मनोरंजक प्रतीत हो।"

मैं कान लगा कर सुनने लगा। उसने कहा:—

(२)

ऐ भाई ! मेरे बाप दादा मुलतान के रहनेवाले थे। वहाँ उनके नाम की अब तक पूजा होती है। वह केवल धनाढ्य हों यह बात न थी। उनका हृदय नेकी से भरपूर था। मेरे दादा के नाम की सारे मुलतान में धाक बँधी हुई थी। वह जब बाज़ार में निकलते थे तो लोग दर्शनों को टूट पड़ते थे। उनके फ़ैसले बिरादरी में प्रामाणिक थे, उनकी प्रत्येक बात पत्थर की लकीर। हमारी बिरादरी में किसी को उनके सामने सिर उठाने का साहस न होता था। कहते हैं, जिस दिन वह मरे थे, उस दिन सारी नगरी में हड़ताल थी, और समाचार-पत्रों ने शोक-अंक प्रकाशित किये थे। उन दिनों मेरे पिता इँग्लेंड में थे। पिता का मृत्यु-समाचार सुनकर उनका दिल टूट गया। कई दिन तक रोते रहे और मकान से बाहर न निकले। वह वहाँ कारोबारी शिक्षा के लिए गये थे। मेरी माँ ने लिखा—अब लौट आओ। परन्तु उन्होंने उत्तर दिया, अब वापस आने को जी नहीं चाहता। मेरी माँ गाँव की रहनेवाली थी। वह पढ़ना-लिखना न जानती थी। उसे यह भी पता न था, कि इँग्लेंड कहाँ है और वहाँ तक कैसे पहुँच सकते हैं। अपने पति का पत्र सुनकर उसके हाथों के तोते उड़ गये। परन्तु वह रोने-धोने नहीं बैठ गई। उसने ज़मींदारी का बोझ अपने गुमाश्ते के कन्धों पर रक्खा और आप विलायत पहुँच गई। प्रेम ने रस्ता दिखा दिया। मेरे पिता को उसके प्रेम और

सतीत्व पर पूरा पूरा भरोसा था। मगर उन्हें यह आशा न थी, कि वह इतनी दूर अकेली आ सकती है। परन्तु प्रेम क्या नहीं कर सकता। उसने उन्हें हिन्दुस्तान चलने के लिए बहुत कहा, परन्तु मेरे पिता को इँग्लेंड की आब-हवा कुछ ऐसी पसन्द आ गई थी, कि वह वापस जाने को सहमत न हुए। उन्होंने लिवरपूल में एक दुकान खोल ली, और वहाँ काम करने लगे। थोड़े ही दिनों में दुकान चमक उठी। रुपया पानी की तरह आने लगा। संभव है यदि आमदनी का कोई निमित्त न बनता, तो मेरे पिता भारत को लौट जाते। परन्तु दुकान का चल निकलना उनके पाँवों की ज़ंजीर बन गया। उन्होंने भारत जाने का विचार सर्वथा त्याग दिया, और ज़मींदारी का काम अपने गुमाश्ते पर छोड़ दिया।

ऐ भाई! उन्हीं दिनों में मेरा जन्म हुआ। मेरे माता-पिता के हर्ष का ठिकाना न था। मेरा नाम हरिसेन रक्खा गया और मुझे बड़े लाड़-प्यार से पाला गया। मैं जब बड़ा हुआ, तो मुझे ज्ञान न था, कि मैं भारतीय हूँ। मैं अपने आपको अँगरेज़ ही समझता था। इस समय मेरी माँ की मृत्यु हो चुकी थी। मेरे पिता और भारत को मिलाये रखनेवाली यही एक कड़ी थी, वह भी टूट गई। अब मेरा पिता सोलहों आने अँगरेज़ था। वह मुझे हरिसेन नहीं किन्तु हैरिसन Harrison कह के बुलाया करता था, और कापर Coupoor कहा करता था। भारतीयता पर अँगरेज़ियत की विजय हो गई थी। आह!

मेरी माँ जीती रहती तो मुझे यह दुर्दिन देखना न पड़ता। मैं केवल परदेसी और अनाथ ही न था, प्रत्युत जातीयता के धन से भी शून्य था। मुझे ज्ञान ही न था, कि मैं भारतीय हूँ। इसी प्रकार अठारह वर्ष गुज़र गये, और मैं कालिज में भरती हुआ। उस समय मुझे पहली बार मालूम हुआ कि मैं भारतीय हूँ। ऐ भाई! मुझे माफ़ करना, परन्तु झूठ न बोलूँगा। मुझे इससे गहरी वेदना पहुँची। भारत-सम्बन्धी मेरे विचार अच्छे न थे। मैं अपनी आँखों में आप गिर गया। प्रायः सोचता था, मैं कैसा अभागा हूँ, कि भारतीय माता-पिता की संतान हूँ। स्वर्ण पर पीतल का धोखा होने लगा। मैं अपनी जाति किसी पर प्रकट न करता था। उसे छिपा छिपा कर रखता था, जैसे सफ़ेद वस्त्र पर धब्बा लग गया हो। अब उन दिनों को याद करता हूँ तो शरीर काँप जाता है, और सिर लज्जा से ऊँचा नहीं उठता। परन्तु उस समय यह ज्ञान न था। जब कभी विचार आता, कि मैं भारतीय हूँ तो कलेजा फट जाता था, जैसे किसी कुरूप मनुष्य के सामने दर्पण आ जाये तो वह लज्जित हो जाता है—मैं अपना नाम हैरिसन कापर ही बताता था। हस्ताक्षर करता तो H. Coupoor लिखता। मेरे मित्रों में से किसी को पता न था कि मैं भारतीय हूँ, न मैं यह प्रकट करना चाहता था। मेरे ख़याल में भारतीय होना और जरायम-पेशा होना एक ही बात थी। जब कभी कोई भारतीय जैन्टलमैन हमारी दुकान पर आ जाता तो मैं उसकी ओर घूर घूर कर

देखता रहता था, और सोचता था, कि इसमें और मुझमें कौन कौन सी वस्तु समान है। रंग, ढंग, आँखें, चाल, बातचीत सब अलग अलग थे। तब मुझे चैन आ जाता, जैसे कोई मुक़द्दमा जीतकर शान्ति का निःश्वास लेता है। परन्तु जब यह ख़याल आता, कि किसी दिन संभव है मेरी जाति लोगों पर प्रकट हो जाये तो मेरे हृदय पर बोझ सा पड़ जाता था और मैं भाग्य को गालियाँ दे डालता था। आख़िर एक दिन वही हुआ, जिसका खटका था। मेरी जाति का कालिज के दूसरे लड़कों को पता लग गया। संध्या का समय था। मैं अपने एक मित्र के यहाँ चाय पीने गया। उसने मुझे देखते ही कहा, "हैलो! आज एक नई बात मालूम हुई।"

मुझे कुछ कुछ संदेह हुआ, घबराकर बोला, "क्या?"

"पर मुझे विश्वास नहीं होता।"

"तुम पहले वह बात तो बताओ।"

"ग़ुस्सा तो नहीं करोगे?"

"नहीं।"

परन्तु हृदय में आग लगी हुई थी।

उसने रुक रुक कर कहा, "तुम मिस्टर ई० क्रास को जानते हो?"

"बड़ी अच्छी तरह से।"

"वह आज कालिज में कह रहा था, कि तुम हिन्दुस्तानी हो। क्या यह सच है?"

मेरी आँखों से आग के चिंगारे निकलने लगे। ऐसा मालूम होता था जैसे किसी ने मेरे सामने मेरा अपमान कर दिया है। यदि उस समय मेरे हाथ में पिस्तौल होता, और क्रास सामने आ जाता, तो मैं उसको वहीं पर ढेर कर देता। मैंने कितना प्रयत्न किया था, कितना सावधान रहा था। सब पर पानी फिर गया—मेरी जाति अब एक खुला रहस्य था।

परन्तु मैंने साहस के साथ उत्तर दिया, "वह रास्कल झूठ बोलता है। इसका नतीजा उसे भुगतना पड़ेगा।"

कहने को तो यह कह दिया, परन्तु दिल में शान्ति न थी। दूसरे दिन कालिज जाते समय लज्जा आने लगी, जैसे मुझसे कोई अपराध हो गया हो। मैंने पढ़ना छोड़ दिया, और दुकान पर काम करने लगा। दूसरे वर्ष मेरे पिता की भी मृत्यु हो गई।

(३)

ऐ भाई! मैंने जी खोल कर बहार लूटी। रुपया, रूप, यौवन, संसार-वाटिका के यह तीन ही मीठे फल हैं, मेरे पास तीनों थे। मैं अपनी प्रशंसा नहीं करता। परन्तु यह कहे बिना न रहूँगा कि मैं साधारण अँगरेज़ों से अधिक सुन्दर हूँ। कम से कम लोग ऐसा ही समझते हैं। मुझ में रङ्ग की विशेषता नहीं, हर एक अँगरेज़ का रङ्ग सफ़ेद है। परन्तु मुझ जैसे भारतीय नक़्श अँगरेज़ों में कहाँ हैं? उन्होंने कई स्त्रियों का सर्वनाश

कर दिया। मैं उनके हृदयों से खेलता था, उनसे हँसता था, परन्तु सभ्यता की मर्य्यादा का कभी उल्लंघन नहीं किया। यहाँ तक कि एक लड़की स्टीला ने अपनी सुन्दरता की सम्पूर्ण शक्ति से मुझ पर आक्रमण किया। यह लड़की लड़की न थी, क़ाफ़ की परी थी। उसका रूप मन को मोह लेनेवाला था। वह साधारण अँगरेज़ लड़कियों की नाईं ओछी न थी, न बात बात में दाँत निकाल निकाल कर खिलखिला उठती थी। वह केवल मुस्कराती थी। मेरा मन लट्टू हो गया।

स्टीला मेरी दुकान पर प्रायः आने-जाने लगी। मैं उसे सब से पहले Attend करता था, और यत्न करता था, कि उसे मेरी दुकान पर अधिक समय तक रुकना पड़े। मैं उसकी ओर इस प्रकार देखता था जैसे अबोध बालक सुरंग चित्र की ओर देखता है। यह प्रेम-कथा का पहला परिच्छेद था, जो बहुत जल्द समाप्त हो गया। इसके बाद हम एक दूसरे से स्वतंत्रता से मिलने लगे। अब यदि वह एक दिन भी न आती, तो मैं अधीर हो जाता था, जैसे शराबी शराब न मिलने से अधीर हो जाता है। मैं उसकी प्रतीक्षा में कई कई घंटे दरवाज़े पर खड़ा रहता था। ऐसी श्रद्धा से किसी भक्त ने अपने आराध्य देव की भी आराधना न की होगी। और यह केवल मेरी ही दशा न थी, उसका भी यही हाल था। मुझे देखकर उसके मुखमंडल पर ज्योति आ जाती थी, आँखों में चमक। प्रायः कहा करती थी, कि तुम्हारे बिना मुझे चैन नहीं आता। घर जाती हूँ तो

खोई खोई रहती हूँ। तुम यहाँ दुकान पर बैठे काम करते हो, मैं घर में बैठी आँसू बहाती हूँ। मेरी अवस्था देखनी हो तो मछली को गर्म रेत पर रख कर देख लो, ठीक उसी तरह तड़पती हूँ।"

मैं यह सुनता तो स्वर्ग में पहुँच जाता। मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि संसार के सकल सुख मेरे ही लिए बने हैं, और मुझसा भाग्यशाली मनुष्य संसार भर में न होगा। ऐ भाई! आज वह जादू टूट चुका है, परन्तु अब भी मेरा यही विचार है, कि स्टीला सी सुन्दरी मैंने आज तक नहीं देखी। अप्सराओं की कहानियाँ मैंने पुस्तकों में पढ़ी थीं। उनका दिल लूट लेनेवाला सौन्दर्य्य चित्रों में देखा था। उनके हृदय को चुरा लेनेवाले कटाक्ष नाटकों में देखे थे। परन्तु यह विचार न था, कि वह सचमुच इस संसार में होती हैं। स्टीला ने मेरा ख़याल बदल दिया। उस पर शहर के बीसियों लखपती जान देते थे, परन्तु वह किसी की ओर आँख उठा कर भी देखना पसन्द न करती थी। इस विचार से मैं मतवालों की नाईं झूमने लग जाता था।

दिसम्बर का महीना था। स्टीला क्रिसमस के लिए कपड़े और आभूषण बनवा रही थी। वह अपनी प्रत्येक वस्तु मुझे दिखाती थी और प्रसन्न होती थी। इसके बिना वह रह नहीं सकती थी। कम से कम मेरा यही विचार था। मैंने सोचा, मुझे भी कोई उपहार देना चाहिए। परन्तु क्या उपहार हो?

मैं सोच में पड़ गया। कई दिनों तक सोचता रहा, अन्त में मैंने एक मोतियों का हार पसन्द किया। यह हार इतना सुन्दर और सुरङ्ग था कि मैं पृथ्वी से उछल पड़ा। परन्तु मूल्य सुना तो कलेजा बैठ गया, एक सौ बीस पौण्ड। मैंने उसे हाथ से रख दिया, और दूसरे हार देखने लगा। परन्तु उनमें से कोई भी आँखों को न जँचा। आख़िर रुपये पर प्रेम की जीत हो गई। मैंने हार ख़रीद लिया और स्टीला की भेंट कर दिया। उसे देख कर स्टीला गर्व से झूमने लगी, और फिर मेरी ओर देख कर बोली, "क्या मैं तुम्हारा धन्यवाद करूँ?"

"नहीं, इसकी कोई आवश्यकता नहीं।"

"अच्छा, इसका मूल्य क्या है?"

"तुम्हारी प्रेम-दृष्टि।"

"नहीं। सच सच कहो।"

"इसे क्रिसमस के दिन पहरना।"

स्टीला प्रेम के जोश में अधीर होकर मुझसे चिमट गई। इस समय उसका प्यार कैसा सच्चा प्रतीत होता था। मुझ पर जादू हो गया। मैंने इस समय तक अपने आपको संयम में रक्खा था, परन्तु इस समय हृदय वश में न रहा।

मैंने स्टीला के दोनों सुकोमल हाथ अपने हाथों में ले लिये, और प्रेम के दफ़्तर खोल दिये। यह मेरे भाग्य की परीक्षा थी। मुझे कभी लैकचर देने का अवसर नहीं मिला, परन्तु उस

समय मेरे एक एक शब्द पर लालित्य निछावर हो रहा था! यह लालित्य स्टीला के हृदय पर बैठ गया। मैंने उसके सामने ब्याह का प्रस्ताव रक्खा। उसने इसका उत्तर न दिया, केवल मुस्कराकर मेरी ओर देखा और गरदन झुका ली। मेरे आनन्द का ठिकाना न रहा। मैं परीक्षा में पास हो गया था।

क्रिसमस का दिन था, संध्या का समय। लोग उपहारों से लदे हुए अपने अपने घरों को जा रहे थे। इस समय उनके मुख पर कैसी मुस्कराहट थी, नेत्रों में कैसी प्रसन्नता। ऐसा जान पड़ता था, मानों आज संसार से दुख-दारिद्र्य का नाम तक उठ गया है। मगर मेरा मन उदास था, स्टोला अभी तक न आई थी। मैं प्रतीक्षा की मूर्त्ति बन रहा था। आँखें दरवाज़े में लोट रही थीं। परन्तु उसका कहीं पता न था। मैं बार बार झुँझला उठता था। सोचता था, उसे मेरी ज़रा भी परवा नहीं, नहीं तो इतनी देर न करती। इरादा किया अब उससे बात न करूँगा। एकाएक किसी के पाँव की चाप सुनाई दी। हताश हृदय धड़कने लगा, आँखें दौड़ कर दरवाज़े में खड़ी हो गईं। देखा यह वही थी, परन्तु कितनी उदास और भग्नहृदया—चेहरा दुःख और निराशा की मूर्त्ति बना हुआ था।

मेरा क्रोध पानी पानी हो गया। प्रेम इस दृश्य को देख नहीं सकता था। मैंने दौड़ कर उसको सहारा दिया, और घबराये हुए कहा, "स्टीला!"

Lovell 9608640 +236 1950

स्टीला ने उत्तर न दिया, परन्तु उसकी आँखों में आँसू आ गये।

"क्या बात है? तुम आज के दिन मेरे पास आकर रो रही हो। बोलो, क्या बात है?"

स्टीला फिर भी चुप रही।

मैंने कहा, "तुम्हारी यह चुप्पी मेरा गला घोट देगी।"

स्टीला ने ठंडी साँस भरी और बोली, "तुम्हारा हार गुम हो गया।"

(४)

ऐ भाई! मेरे हृदय पर जैसे किसी ने गर्म लोहा रख दिया। यह हार कैसा सुन्दर था, कितना बहुमूल्य। मैं दिन गिन रहा था, कि क्रिसमस कब आये और कब स्टीला उसे पहने। मैं मन में सोच रहा था, कि जब वह उसे गले में पहनेगी तो कैसी सुन्दरी देख पड़ेगी। क्या क्या कामनाएँ थीं, क्या क्या उमंगें, सब पर पानी फिर गया। मैंने शोक से गरदन झुका ली। मेरी इस चेष्टा से स्टीला का उदास मुख और भी उदास हो गया। आँखों के आँसू गालों पर बहने लगे।

मैंने कहा, "अब रोने से क्या होगा। चला गया है, चला जाने दो। नुक़सान भी तो होते ही रहते हैं।"

परन्तु यह शब्द स्टीला की सिसकियों में इस प्रकार डूब गये, जैसे लोहे के हलके हलके कीले नदी में डूब जाते हैं।

उसके अश्रु-प्रवाह में कोई अन्तर न आया। यह देखकर मेरा हृदय व्याकुल हो गया। मैंने उसके निकट जाकर उसे धीरज देने का प्रयत्न किया, परन्तु उस पर कुछ प्रभाव न पड़ा। स्त्री आभूषणों की हानि को सहन नहीं कर सकती। मैं जल्दी जल्दी बाज़ार गया, और उसी तरह का एक और हार ख़रीद लाया। स्टीला के घावों पर मरहम लग गया। उसके बहते हुए आँसू रुक गये। मेरे हृदय को शान्ति हुई, जैसे डूबती हुई नाव को किनारा मिल जाता है।

इसके पश्चात् रस्ता खुल गया। स्टीला मुझसे बढ़िया बढ़िया चीज़ें माँगने लगी। पहले पहल मैं इससे प्रसन्न हुआ। मैं समझता था, वह मुझ पर उपकार कर रही है। परन्तु बाद में वे उपकार अपकार हो गये। हम दिन को समुद्र की सैर करते, रात को थियेटर देखने जाते। दुकान की ओर ध्यान न रहा। होते होते नौबत यहाँ तक पहुँची कि बिक्री कम हो गई। परन्तु मैंने फिर भी परवा न की और अपने पश्चिमी दिल बहलाव में डूबा रहा, यहाँ तक कि दुकान का दीवाला निकल गया और मेरा सर्वनाश हो गया। अब मुझे स्टीला की आँखें कुछ कुछ बदली हुई मालूम हुईं। परन्तु मैंने यह कह कर दिल को तसल्ली दे ली कि यह मेरा भ्रम है। मैंने बालू की भीत खड़ी की।

रात्रि का समय था। मैं और स्टीला नाटक देख रहे थे। एकाएक दर्शकों में हलचल मच गई। आर्डर आर्डर की

आवाज़ें सुनाई दीं, परन्तु कुछ असर न हुआ। तमाशा में कुछ भारतीय विद्यार्थी आ गये थे। उनमें और अँगरेज़ों में झगड़ा हो गया। इतने में किसी ने कहा—हिन्दुस्तानी सूअरों को मारो। मैं नहीं जानता उस समय मुझे क्या हो गया। मैं उस समय अपने आपे में न था। मुझ पर एक पागलपन सा सवार हो गया। मैं जोश से आगे बढ़ा, और उस स्थान पर जा पहुँचा जहाँ अँगरेज़ भारतीय छात्रों से मारपीट कर रहे थे। मैं नहीं कह सकता मेरे हाथों में कहाँ से बल आ गया था। मैं भीड़ को चीरता हुआ निकल गया और भारतीय विद्यार्थियों की ओर से लड़ने लगा। भारतीय विद्यार्थी पीछे हट रहे थे, मुझे अपनी ओर से लड़ते देखकर उनके उखड़ते हुए पाँव जम गये और वे डट कर लड़ने लगे। मैं उनको उत्तेजना दे रहा था, कि इतने में मेरे सिर पर एक लठ पड़ा और मैं मूर्छित होकर गिर पड़ा।

जब मुझे सुध आई तो मैंने अपने आपको अस्पताल में पाया। परन्तु घाव साधारण था, दो चार दिन में ठीक हो गया। अब अभियोग पेश हुआ। मेरे बयान से अदालत में सनसनी फैल गई। किसे कल्पना हो सकती थी, कि मेरे जैसा मनुष्य हिन्दुस्तानी हो सकेगा। लोग काना-फूसियाँ करने लगे। भारतीय विद्यार्थी मेरी ओर इस प्रकार देखते थे मानों मैं उनका इष्ट देवता हूँ। परन्तु मुझे इस पर आश्चर्य्य न था। आश्चर्य्य इस बात पर था, कि स्टीला ने मेरी ओर से

SRI PRATAP COLLEGE LIBRARY
SRINAGAR.

सफ़ाई की गवाही देना स्वीकार न किया। क्या आश्चर्य्य की बात न थी, कि जिस स्त्री के लिए मैंने अपना कारोबार नष्ट कर दिया, अपनी बनी हुई आजीविका का नाश कर दिया, जिसकी ख़ातिर मैंने अपना जीवन और उसके भविष्य का विचार न किया, वही स्त्री मेरे लिए दो शब्द कहने के लिए भी तैयार न हुई। बालू की भीत गिर गई।

उस समय वह अदालत में थी। उसने मेरी ओर देखा, परन्तु इस प्रकार जैसे वह कोई आकाश से उतरी हुई परी थी और मैं पृथ्वी पर रेंगनेवाला तुच्छ कीड़ा। मैं सन्नाटे में आ गया। उसकी आँखों में उस समय अभिमान बैठा था। इस अभिमान में वह पहला प्रेम कहीं नज़र न आता था।

मुक़द्दमे का फ़ैसला हुआ, तो लोग दंग रह गये। मुझे दस दिन का कारावास मिला। समाचार-पत्रों में शोर मच गया, परन्तु मुझे परवा न थी। क़ैद से छूटा तो भारतीय छात्रों ने मेरा जुलूस निकाला, और मुझे मान-पत्र दिया, साथ ही एक थैली (Purse) भी भेंट की। इस मान-पत्र से मेरा मस्तिष्क आकाश पर पहुँच गया। सोचता था, मैं कैसा भाग्यशाली हूँ, जो भारतीय हूँ। अँगरेज़ कई वर्ष बना रहा, किसी ने परवा न की। भारतीय एक दिन बना, एड्रेस मिलने लगे। परन्तु मुझे सबसे अधिक दुख स्टीला के दुर्व्यवहार पर था। कैसी कृतघ्न और हृदय-हीन औरत है। मैंने उस पर अपना सब कुछ निछावर कर दिया। मुझे यह स्वप्न में भी

विचार न था कि वह समय पर आँखें बदल लेगी। उस दिन मुझे अपनी भारतीयता पर अभिमान होने लगा। शाम को जब डेली हैरल्ड का संवाददाता मुझसे इंटरव्यू (Interview) करने आया, तो मैंने बड़े गौरव से कहा—"हाँ! मैं हिन्दुस्तानी हूँ, और परमात्मा का धन्यवाद है, कि मैं और कुछ नहीं हूँ।" संवाददाता ने पूछा—"आपका अँगरेज़ी अदालतों के सम्बन्ध में क्या विचार है?"

मैंने उत्तर दिया, "यदि मैं अपनी जाति को प्रकट न करता तो, मेरा विचार है, फ़ैसला सर्वथा विपरीत होता। परन्तु जो सुख मुझे इस दण्ड से मिला है, वह छूट जाने से कभी न मिलता। दोष एक-मात्र अँगरेज़ दल का था। भारतीय सर्वथा निर्दोष थे।"

"आपने इस फ़साद में क्यों हिस्सा लिया?"

"यह स्वाभाविक था। मैं रह नहीं सकता था।"

"पर क्यों?"

"मेरा लहू जोश मारने लगा था।"

"तो आपने हुजूम पर हमला किया?"

"जी नहीं। हुजूम ने मुझ पर हमला किया और मैं ही घायल हुआ। हर एक आदमी जो इस हुजूम में शामिल था, मेरे साथ इस विचार में सहमत होगा, कि मुझे दण्ड देना केवल अपनी जाति का पक्षपात करना था।"

इस इंटरव्यू का समाचार-पत्रों में कई महीने शोर मचा रहा।

(५)

ऐ भाई ! मेरी दुकान का दिवाला निकल गया था, परन्तु मुझे भूखों नहीं मरना पड़ा। मेरा मित्रमण्डल बहुत विस्तृत था। मैंने उनके सामने रुपये-पैसे का कभी मुँह न देखा था। मेरे इस संकट के समय वह उदारता काम आ रही थी। जिस मित्र से जो चाहता था माँग लेता था, कोई "न" नहीं करता था। इसी प्रकार कुछ महीने बीत गये। इसके पश्चात् सुहृद् मित्र भी मुँह फेरने लगे। अब वे मुझे आता देखते तो हीले बहानों से टालने की करते। मैं बुलाता था तो उन्हें आवाज़ सुनाई न देती थी। यहाँ तक कि मुझे तीन दिन निराहार बीत गये। जी चाहता था, किसी से कुछ माँग लूँ परन्तु आत्म-सम्मान हाथों को आगे न बढ़ने देता था। मैंने निश्चय किया, कि अब किसी से कुछ न माँगूँगा। ऐश्वर्य लुट चुका था, उसकी शान बाक़ी थी। मैंने भारत को सामुद्रिक-तार (Cablegram) भेजा था, और अपनी ज़मीन के गुमाश्ते से रुपया माँगा था। इस समय उसी की बाट देख रहा था।

दोपहर का समय था। मैं अपने कमरे के बाहर खड़ा सोच रहा था, कि आज का दिन कैसे कटेगा। इतने में पोस्टमैन आता दिखाई दिया। मेरा कलेजा धड़कने लगा। विचार आया, क्या संभव है, कि मेरा कोई मनी-आर्डर आया हो। कोई बीमा, कोई रजिस्टरी, कोई पत्र। इस

विचार से चित्त प्रफुल्लित हो गया, जैसे वसंत के झोंकों से फूल ताज़ा हो जाते हैं। परन्तु दूसरे विचार से हृदय पर फिर निराशा छा गई, जैसे फूल तप्त लू से मुर्झा जाते हैं। मगर नहीं, आशा सामने खड़ी थी। पोस्टमैन मेरे सामने आकर रुका, और एक पत्र मेरे हाथ में देकर आगे निकल गया। मैंने पत्र खोल कर पढ़ा, तो हर्ष से उछल पड़ा। यह मेरे मुलतान के गुमाश्ते का पत्र था। उसने मुझे सूचना दी थी, कि आठ दिन हुए आपके हिसाब में आठ सौ पौण्ड ईस्टर्न बैंक को भेज दिये गये हैं। मैं इस समाचार से ऐसा प्रसन्न हुआ, मानों डरबी की लाटरी जीत ली है। मुँह कानों तक लाल हो गया। पास से एक गाड़ी (Omni Bus) जा रही थी, मैं उचक कर उस पर सवार हो गया, और बोला, "ईस्टर्न बैंक को ले चलो।"

वहाँ जाकर मैंने कुछ रुपया निकलवाया, और एक होटल में पहुँचा। पेट में चूहे दौड़ रहे थे। उस समय मैं खाने पर इस प्रकार टूटा, जैसे बर्फ़ानी इलाक़ों में भूखे भेड़िये घोड़ों पर टूटते हैं। बाहर निकला तो आँखों में फिर वही अभिमान था, मुख पर फिर वही निश्चिन्तता। इतने में देखा, सामने से स्टीला आ रही है, परन्तु उसकी दशा में आकाश-पाताल का अन्तर पड़ गया था। न आँखों में वह चमक थी, न होंठों पर वह मुस्कराहट। रंग शिशिर-ऋतु के वृक्षों की नाईं पीला हो गया था। कौन कह सकता था, कि यह स्त्री कभी सारे लिविरपूल

की सुन्दरियों की रानी होगी। मेरी आँखों में आँसू भर आये। मैंने पश्चिमी-सभ्यता को एक ओर रक्खा, और आगे बढ़कर कहा, "क्यों? तुम्हें क्या हुआ है?"

स्टीला ने अपनी आँखें मेरी ओर उठाईं, परन्तु उनमें वह लावण्य, वह तेज, वह आकर्षण न था। तब हम दोनों की आँखें मिलीं, पर उस पुराने प्रेम-भाव से नहीं। एक में अभिमान भरा हुआ था, दूसरी में नैतिक-पतन के भाव छिपे हुए थे। स्टीला के मुँह से बात न निकलती थी। उसने केवल इतना कहा, "ख़ुदा के लिए मेरी मदद करो।" और रोने लगी।

मैंने अधिक पूछना उचित न समझा। ग़रीबी से अधिक दुखदायी ग़रीबी का विज्ञापन है। मनुष्य दरिद्रता से नहीं डरता, परन्तु उसके प्रकट करने से उसका कलेजा फटने लगता है। मैंने चिक-बुक निकाली और आठ पौण्ड का चिक काट कर स्टीला के हाथ में दे दिया।

कदाचित् स्टीला को मुझसे यह आशा न थी। उसने मेरी ओर इस प्रकार देखा जिस प्रकार सहमा हुआ अपराधी बालक अपने ऊपर उपकार करनेवाले की ओर देखता है, और धीरे धीरे चली गई। मैं अपने मकान पर पहुँचा और कौच पर लेट कर सिगार पीने लगा। कोई एक घण्टा बीता होगा कि कमरे का दरवाज़ा खुला और बैंक का एक कर्मचारी स्टीला को साथ लिये हुए अन्दर आया। उसने आते ही

स्टीला का चिक मेरे हाथ में दे दिया, और पूछा, "क्या यह चिक ठीक है ?"

मेरा कलेजा धक धक करने लगा। चिक में आठ के अस्सी पौण्ड बनाये हुए थे।* ऐ भाई! यदि मैं चाहता तो उसी समय स्टीला को गिरफ़्तार करा सकता था। उसका अपराध साधारण न था। वह दण्ड से बच न सकती थी। उसकी रुखाई मेरी आँखों के सामने फिर गई। मेरे हृदय में पैशाचिक हर्ष की गुदगुदी होने लगी।

परन्तु फिर विचार आया, यह फिर भी स्त्री है, स्त्री का हृदय दुर्बल होता है, विचार छोटे। पता नहीं किन कारणों से इसने मेरे साथ विश्वासघात किया। वह इस समय अत्यन्त दुःखिनी प्रतीत होती है। उसका मुख आँसुओं से भीगा हुआ था। नहीं तो ऐसा अपराध करने का कभी साहस न करती। मरे को मारना कहाँ की वीरता है। मैंने उसकी ओर भाव-भरी आँखों से देखा। वह भरे पिस्तौल के सामने खड़े हुए घोड़े की नाईं काँप रही थी। उसने मुख से कुछ न कहा, परन्तु आँखों ने भाव के दफ़्तर खोल दिये। ऐसा प्रतीत होता था, कह रही है, "मैंने तुमसे धोखा किया, परन्तु कभी तुम्हारी थी। क्या तुम मेरी लाज न रखोगे।"

---

* आठ के आगे 0 लिख देना बहुत आसान है। इसी तरह EIGHT का EIGHTY बना लेना भी कठिन नहीं।

इन आँखों ने मेरे विचारों को अस्तव्यस्त कर दिया। प्रतीकार का विचार ओछा प्रतीत होने लगा। मैंने चिक से आँख उठाकर बैंक के कर्मचारी की ओर देखा और कहा, "हाँ यह ठीक है।"

"परन्तु—"

"तुम्हारी सावधानी सराहनीय है। मैंने पहले आठ पौण्ड लिखे थे, पीछे अस्सी बना दिये। लाओ हस्ताक्षर कर दूँ। मुझे शोक है, इस बेचारी लेडी को इतना कष्ट उठाना पड़ा।"

और यह कहते कहते मैंने जहाँ जहाँ पीछे अक्षर बढ़ाये गये थे, वहाँ वहाँ अपने हस्ताक्षर कर दिये।

(६)

दूसरे दिन मुझसे एक भारतीय सज्जन मिलने आये। उनके साथ उनकी स्त्री भी थी। पति का नाम रूपचन्द था, स्त्री का देवकी। दोनों सभ्य और मिलनसार थे। उनसे मिल कर चित्त प्रसन्न हो गया। देवकी बहुत ही सुन्दर थी। उसने भारतीय फ़ैशन की साड़ी पहनी हुई थी। इस वेष ने उसकी सुन्दरता को पर लगा दिये थे। उसके तन पर न आभूषण थे, न मुख पर पौडर। परन्तु उसको देखकर हृदय पर रोब छा जाता था। वह इस मर्त्यलोक की प्रतीत न होती थी। उसकी आँखों में भोलापन था, मुख पर सरलता। बातें करती थी तो मुख से फूल झड़ते थे।

वह न सिर हिलाती थी, न आँखें मटकाती थी। परन्तु फिर भी उसकी एक एक चेष्टा में जादू था। मगर इस जादू में उत्पात और उपद्रव न था। यह वह जादू था, जो कदाचित सौन्दर्य्य के जादू से भी अधिक प्रभावशाली होता है। यह आत्म-गौरव और सतीत्व का जादू था। मुझे उस दिन पहली बार ज्ञान हुआ कि भारतीय सौन्दर्य्य के सम्मुख पश्चिमी सुन्दरता कितनी फीकी और तुच्छ है। मगर इस सुन्दरता से कहीं अधिक वह लज्जा थी जो मुझे देवकी के मुख पर दिखाई दी। मेरी दृष्टि उसके पैरों में लोटने लगी। उसे मुख पर उठने का साहस न होता था। वह कुछ घंटे मेरे पास ठहरे। अनेक विषयों पर बातचीत होती रही। तब मुझे मालूम हुआ कि देवकी कितनी सुयोग्य और मेधावी है। मैंने जिस विषय पर बात छेड़ी उसने मेरा मुँह बन्द कर दिया। मैं छटपटा कर रह गया। उस समय विचार आया, क्या यही स्त्रियाँ हैं, जिनके सम्बन्ध में कहा जाता है, कि उनको किसी भी बात का सलीका नहीं। यदि उनको शिक्षा नहीं दी जाती, यदि उनके सभ्य बनाने का यत्न नहीं किया जाता, तो क्या यह उनका दोष है?

वह जाने के लिए तैयार हुए तो मैं उदास सा हो गया। मुझ पर किसी ने जादू नहीं किया, टोना नहीं किया, परन्तु मेरा हृदय बस में न था। मैंने भूमि की ओर देखते हुए रुक रुक कर कहा, "मुझे आशा है, आप अब प्रायः यहाँ आते रहेंगे?"

इसके उत्तर में रूपचन्द केवल मुस्कराए। उन्होंने कोई उत्तर न दिया। परन्तु देवकी ने धीरे से कहा, "तुम्हें भारतीय बनाने के लिए।"

कैसी प्रबल चोट थी, कैसा सूक्ष्म व्यङ्ग। मेरे अन्तस्तल में उथल-पुथल होने लगी। सोचने लगा, कैसी मूर्खता की, जो आज तक भारतीयों से घृणा करता रहा। यदि मुझे पहले पता होता, कि वे ऐसे हँसमुख, ऐसे सभ्य, ऐसे मिलनसार हैं तो अपनी जाति पर क्यों लज्जित होता। इस कुछ घंटों की भेंट से मेरे विचारों में परिवर्तन आ गया। मैंने निश्चय किया अब स्टीला का विचार छोड़ दूँगा और रूपचन्द और देवकी के साथ भारत लौट जाऊँगा।

आठ दिन बीत गये। हमारा मेलजोल बढ़ने लगा। अब देवकी और रूपचन्द प्रतिदिन सन्ध्या समय आते और डेढ़ डेढ़ दो दो घंटे मेरे पास ठहरते थे। उनकी बातों में समय उड़ता मालूम न होता था। जी चाहता था, घड़ी की सूइयाँ खड़ी हो जायँ। परन्तु काल की गति को किसने रोका है? जब वे मुझसे भारतीय गार्हस्थ्य जीवन का वर्णन करते थे, तो मेरी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती थी। मैं कहता था, मालूम होता है कहानियाँ सुना रहे हो। देवकी मुस्कराकर उत्तर देती, "तुमने पश्चिम में जन्म लिया है, पश्चिम में पले हो। यहाँ माया का शासन है। तुम्हें क्या मालूम कि भारतीय आध्यात्मिकता कैसी उच्च और श्रेयस्कर है। वहाँ एक बार

जाकर देखो तो तुम्हारी आँखें खुल जायँ। वहाँ से वापस न आ सकोगे। तुमने पश्चिमी स्त्रियाँ देखी हैं, जिन्हें अपने बनाव-सिंगार ही से अवकाश नहीं मिलता। वे इसे ही जीवन का आदर्श समझती हैं। इससे परे जाना उनके लिए असंभव है। परन्तु भारतीय महिला प्रेम का दूसरा नाम है। वह अपने पति की इस प्रकार पूजा करती है, माने वह उसका परमात्मा है। वह उस पर तन मन धन सब कुछ निछावर कर देती है। यदि संसार भर की विवाहिता नारियों को एकबारगी स्वतन्त्र कर दिया जाए और उनसे कहा जाए, कि अब फिर से अपने अपने लिए पति चुन लो, तो मुझे विश्वास है, केवल भारतीय रमणी ही ऐसी निकलेगी जो अपने पहले ही पति की ओर दौड़ेगी। वहाँ हम पति-पत्नी-सम्बन्ध को सांसारिक-सम्बन्ध नहीं समझते। यही कारण है, कि हमारे देश में हज़ारों और लाखों वर्ष के पतन और दासत्व के होते हुए भी सतीत्व और सदाचार के ऐसे उच्च और आश्चर्यजनक उदाहरण देख पड़ते हैं, कि सीता और सावित्री की याद ताज़ा हो जाती है।"

इन बातों से मेरे हृदय में जन्मभूमि का प्रेम जाग उठा। सोचता था क्या सचमुच भारतवर्ष ऐसा देश है। कभी कभी हृदय चञ्चल हो जाता था। मैं चाहता था, पंख मिलें, तो उड़कर भारत पहुँच जाऊँ, और देवकी के कथन को परीक्षा की कसौटी पर परख कर देखूँ।

(७)

ऐ भाई ! इस घटना को दो सप्ताह बीत गये। मैं उदास और दुखी रहने लगा था। अब लिवरपूल के बाज़ारों में और समुद्र-तट पर घूमने को जी न चाहता था। हृदय में भारत-दर्शन की अभिलाषा लग रही थी। जिस प्रकार सोना देखकर पीतल के टुकड़े मनुष्य के मन से उतर जाते हैं, वैसे ही अब मुझे अँगरेज़ी सभ्यता से घृणा हो गई। सारा दिन कमरे में पड़ा रहता था। परन्तु शाम को देवकी और रूपचन्द आते तो जी बहल जाता था। उनको देखकर हृदय में जन्मभूमि की महिमा का चित्र खिँच जाता था।

एक दिन स्टीला का पत्र आया। लिखा था :—

माई डियर हैरिसन !

तुम्हारे उस दिन के सद्व्यवहार ने मुझे मोह लिया है। मैं समझ नहीं सकती, तुम्हारा धन्यवाद कैसे करूँ। शब्दों में यह शक्ति नहीं। मैंने सुन रक्खा था कि भारतीय लोग देवता-स्वभाव होते हैं, परन्तु इस पर विश्वास न आता था। मैं कहती थी, यह सब कहने की बातें हैं। परन्तु तुमने मुझे विश्वास दिला दिया। तुम्हारा प्रेम मेरे हृदय में इतना प्रबल कभी न था। अब वहाँ किसी दूसरे के लिए स्थान नहीं। मैं उस दिन के लिए तड़प रही हूँ जब हम दोनों भारतवर्ष चलें और वहाँ की भूमि, खेत, पर्वत, नदियाँ, हरियावल, आकाश देख कर ख़ुश हों। अब मेरा स्वास्थ्य

अच्छा है। माता पिता का मृत्यु-शोक हलका हो रहा है। क्या किसी दिन थियेटर न चलोगे ?

—तुम्हारी स्टीला

पत्र पढ़ कर पुराने रोग का फिर दौरा हुआ। शराबी शराबख़ाने के सामने पहुँचता है, तो अपनी प्रतिज्ञा भूल जाता है। स्टीला का प्यारा प्यारा चेहरा आँखों में फिरने लगा। मैं बहुत सोचता था, परन्तु समझ न सकता था, कि स्टीला ने चिक में धोखा क्यों किया ? इस पत्र की अन्तिम पंक्तियों ने यह रहस्य खोल दिया। स्टीला के माता-पिता की मृत्यु हो चुकी थी। अब वह अनाथ थी, निःसहाय, असार संसार में अकेली। उसका रूप रंग कैसा फीका देख पड़ता था, आँखें अन्दर को धँस गई थीं; जैसे महीनों से बीमार हो। मेरा यह विचार झूठ न था। ऐसी दशा में उसका दोष दोष नहीं रहता, धोखा न करती तो क्या करती। परन्तु यदि मुझसे साफ़ साफ़ कह देती, तो बात यहाँ तक न पहुँचती। बीते हुए दिन फिर वापस आ गये। फिर उसी तरह रुपया उड़ने लगा। अब फिर वही स्टीला थी, वही मैं था, वही आँखें थीं, वही आँखों के भाव थे।

एक दिन मैंने कहा, "स्टीला ! रुपया ख़र्च हो रहा है, क्या करेंगे ?"

स्टीला ने मेरे कोट का बटन दबाते हुए पूछा—"कितना रुपया बाक़ी है ? ज़रा बैंक की पास-बुक देखो।"

मैंने किताब देख कर उत्तर दिया, "केवल सवा सौ पौण्ड बाक़ी हैं।"

"डियर! कुछ चिन्ता न करो। मेरा चचा सख़्त बीमार है। कुछ दिनों में मर जायगा। वह लाखों का मालिक है। उसकी सारी जायदाद मुझे मिलेगी।"

निराशा में आशा की किरण दिखाई दी। मैंने कुरसी आगे सरका ली, और उत्कंठित नेत्रों से उसकी ओर ताकते हुए बोला, "तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा याद है?"

"उसे दिल की गाँठ समझो।"

"रुपया पाकर बदल तो न जाओगी?"

"मैं ऐसी कमीनी नहीं।"

"रुपया बुरी चीज़ है। यह अच्छे अच्छों को बदल देता है।"

"पर तुम्हारा प्रेम रुपया से कहीं बढ़ कर है। उसके सामने दुनिया भर का रुपया तुच्छ है।"

इतने में एक लड़का लिवरपूल टाइम्ज़ का ताज़ा अंक ले कर आया और मेज़ पर रख कर चला गया। मैंने उसे उठाते हुए पूछा।

"तो बुड्ढा कब तक मर जायगा?"

"बहुत जल्द। शायद ही दो चार दिन निकाले।"

इतने में समाचार-पत्र के पहले पृष्ठ पर मेरी दृष्टि गई। मैं ज़मीन से उछल पड़ा। कलेजा होठों तक आ गया।

यह समाचार न था, मेरे सौभाग्य का द्वार था। मोटे मोटे अक्षरों में लिखा था:—

मिस्टर क्रास वुड की मृत्यु।

अन्तिम शब्द।

सारी जायदाद मेरी स्टीला के नाम।

जब अख़बार प्रेस में जा रहा था, तो हमें सूचना मिली कि लिवरपूल की प्रसिद्ध दुकान पीपल्ज़शाप के अधिपति मिस्टर क्रास वुड की मृत्यु हो गई है। आप कुछ देर से बीमार थे, परन्तु यह ख़याल न था, कि वह इतनी जल्दी मर जायँगे। आप ने अपनी सारी संपत्ति अपनी अनाथ भतीजी स्टीला के नाम लिख दी है, जो आज कल बड़े संकट में है। आपके होंठों पर अन्तिम समय में अपनी भतीजी का नाम था।"

मैंने समाचार-पत्र स्टीला के हाथ में रख दिया। उस समय मैं ऐसा प्रसन्न था, जैसे वह संपत्ति मुझे ही मिली है। स्टीला की आँखें ख़ुशी से चमकने लगीं। मुख पर मुस्कराहट का रङ्ग झलक रहा था। वह उठ कर खड़ी हो गई और अपने लम्बे क़द को और भी लम्बा करके बोली,—"मेरा ख़याल बिलकुल ठीक निकला। अब हम ग़रीब नहीं हैं।"

यह कहते कहते उसने मेरी ओर (प्यार भरी आँखों से) देखा और टोपी पहन कर बाहर निकल गई। शोक ने पाँव

को पर लगा दिये थे। मैं आरामकुरसी पर लेट गया और आँखें बन्द करके अपने भविष्य का चित्र बनाने लगा। सोचता था, जब स्टोला का मुझसे ब्याह होगा तो लोग चौंक उठेंगे। समाचार-पत्रों में शोर मच जायगा। कई लखपती मुँह खोले बैठे हैं, सब के सब निराश हो जायँगे। कहेंगे, एक हिन्दुस्तानी अँगरेज़ों से बाज़ी मार गया। मेरी बाछें खिली जाती थीं।

सायंकाल को रूपचन्द और देवकी आये तो मैंने यह शुभ समाचार उनको सुनाया। परन्तु उन्होंने विश्वास न किया। बोले, "तुम बड़े भोले हो। पश्चिम में रहे हो तो क्या हुआ, तुम्हारी प्रकृति तो नहीं बदल गई। स्टोला जब निर्धन थी, तुम्हारी थी। इससे उसे लाभ था। परन्तु अब वह पैसेवाली है। उसके कई धनाढ्य सजातीय उससे ब्याह करने को तैयार होंगे। अब उसे तुम्हारी क्या परवा है। देख लेना, वह साफ़ बदल जायगी।"

मनुष्य जिसे चाहता है, जिस पर विश्वास करता है, उसके विरुद्ध नहीं सुन सकता। मुझे उन पर बहुत ही क्रोध आया। रुखाई से बोला, "मुझे उससे यह आशा नहीं।"

रूपचन्द समझ गये, इस समय कुछ कहना व्यर्थ है। पागल और प्रेम-आसक्त को शिक्षा ऐसी बुरी लगती है, जैसी तेज़ कटारी, प्रत्युत इससे भी बुरी। उन्होंने बात का प्रकरण बदल दिया परन्तु आज मुझे उनकी बातें अच्छी न लगीं। कभी उन्हें सुन कर चित्त प्रफुल्लित हो जाता था। मैंने समाचार-पत्र हाथ में ले लिया और उसे देखने लगा। किसी को

टालने की यह पश्चिमी विधि है। रूपचन्द और देवकी उठ खड़े हुए। मैंने कहा, "इतनी जल्दी।"

परन्तु हृदय धड़क रहा था, कि कहीं बैठ न जाएँ।

देवकी ने उत्तर दिया, "हृदय में प्रसन्न हो रहे होगे।"

मुझ पर घड़ों पानी पड़ गया, मगर हँस कर चुप हो रहा। वह दोनों चले गये, तो मैंने शान्ति की साँस ली। मुझे आशा थी, कि स्टीला आ रही होगी। मैं आधी रात तक दरवाज़े पर खड़ा रहा, परन्तु वह न आई। तब सोचा, आज देर हो गई है, कल आएगी। रात को यही स्वप्न आते रहे। दिन हुआ, आशा ने फिर दरवाज़े में खड़ा कर दिया। कोई मोटर आता, तो संदेह होता, वही आ रही है। कोई आवाज़ सुनता तो समझता, वही होगी। परन्तु वह न आई। इसी प्रकार सारा दिन बीत गया। मेरे पाँव दुखने लगे। निराश होकर अंदर चला गया, और कुरसी पर गिर पड़ा। परन्तु आशा इतनी जल्दी नहीं मरती। आँखें दरवाज़े की ओर जमी रहीं। यहाँ तक कि रात आधी से अधिक बीत गई, और होटल के नौकर ने दरवाज़ा बन्द कर लिया। यह मानों मेरी आशा का दरवाज़ा था, जो बन्द हो गया। सोचने लगा, क्या कारण है जो वह आज भी नहीं आई। अब मुझे उस पर रह रह कर क्रोध आ रहा था। कहीं संपत्ति पाकर मुझे भूल तो नहीं गई। यदि यही बात है तो मैं उसका मुँह भी न देखूँगा। रुपया पाकर

अभिमान करती है। परन्तु उसे सोचना चाहिए कि मैं भी कंगाल न था। मैंने अपना धन उसी पर निछावर किया है। सँभाल कर रखता, तो उस जैसी सैकड़ों ख़रीद लेता। फिर विचार आया, नहीं; उसे मुझसे वास्तव में प्रेम है। वकीलों से सलाह कर रही होगी। दुकान की देख-भाल में लगी होगी। समय नहीं मिला नहीं तो भागी भागी चली आती।

इसी आशा में एक सप्ताह बीत गया, परन्तु वह न आई। अब मुझे विश्वास हो गया, कि मेरी आशा-लता हरी न होगी। हृदय को शान्ति की प्रेरणा करने लगा, जिस प्रकार कोई अपने प्यारे भाई-बन्धु की मृत्यु पर हृदय को समझाता है। परन्तु उसका ध्यान भूलता न था। मुझे वह रह रह कर याद आती थी, जैसे मरे हुए संबन्धी का ख़याल सहज में दूर नहीं होता। अकस्मात् एक दिन एक आदमी ने आकर पत्र दिया। लिखा था:—

"इसी समय आओ, दरवाज़े पर खड़ी हूँ। स्टीला"

(८)

ऐ भाई! मैं ख़ुशी से झूमने लगा। उस समय मैं भूमि पर था, परन्तु मेरे विचार आकाश में उड़ रहे थे। भागा भागा स्टीला के मकान पर पहुँचा। वह सुन्दर थी। उसे मैंने सैकड़ों बार देखा था। परन्तु उस बहुमूल्य वेश में वह अप्सरा मालूम होती थी। आज उसका सौन्दर्य्य फटा पड़ता

था। वह सचमुच मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। मुझे देख कर उसके होंठों पर मुस्कराहट आ गई। मेरे हृदय में क्रोध भरा था। मेरा विचार था, कि जाते ही उलाहनों की बौछाड़ शुरू कर दूँगा। परन्तु इस मुस्कराहट के प्रवाह में क्रोध और उलहने इस प्रकार बह गये जैसे पानी के प्रवाह में काग़ज़ और तिनके बह जाते हैं। मेरे होंट बन्द हो गये। परन्तु स्टीला चुप न रही। मेरी ओर तिरछी आँखों से देख कर बोली, "मुझे आप पर बहुत क्रोध है।"

अब मेरी जिह्वा को भी बोलने का साहस हुआ। मैंने कहा—

"मुझे चुप देख कर आपको साहस हो गया है।"

"आपने मेरी बात तक न पूछो। बड़े कठोर-हृदय हो।"

"यह मुझसे न पूछो, अपने दिल से पूछो।"

"पर आप आये क्यों नहीं? क्या इतना भी ख़याल न था, कि चल कर देखूँ तो सही। ग़रीब पर क्या गुज़री है।"

"अब ग़रीब हम हैं। आपके तो भाग खुल गये।"

"यह उलाहने ताने अच्छे नहीं लगते।"

मैंने सिगार सुलगा कर उत्तर दिया, "अब जो कहो, सब सच है।"

"जी चाहता था, ज़हर खाकर मर जाऊँ। ज़रा ख़याल करो, कितना बड़ा मकान है और कैसा सजा हुआ। पर, तुम्हारे बिना क़बरिस्तान से ज़्यादा डरावना मालूम होता था।"

मैंने आगे बढ़ कर उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया, और प्यार से बोला, "तुमने मुझको सूचना क्यों न दी ? दौड़ता हुआ चला आता।"

स्टीला ने अपनी ठोड़ी पर उँगली रख कर उत्तर दिया— "लो और सुनो। मुझे तो सिर खुजलाने की भी फ़ुरसत न थी।"

"यदि मुझे यह मालूम होता—तो"

"अच्छा अब जाने दो। तुम्हें देख कर सारा क्रोध उतर गया।"

मैं कुछ देर चुप रहा, और फिर स्टीला के मुँह की ओर ताकते हुए धीरे से बोला, "स्टीला ! अब ब्याह में देर न होनी चाहिए। इस तरह मिलने मिलाने से दिल की प्रेम-पिपासा नहीं बुझती।"

स्टीला के मुख पर लज्जा की लाली दौड़ गई। हाथों के दस्ताने उतारते हुए बोली, "मेरा अपना भी यही ख़याल है।"

सहसा बाहर किसी के पाँवों की चाप सुनाई दी, और साथ ही आवाज़ आई, "इस छोटे कमरे में रख दो।"

स्टीला के चेहरे का रङ्ग उड़ गया। हाथ पाँव काँपने लगे। ऐसा जान पड़ता था, वह गिर कर मूर्च्छित हो जाएगी। मैं काँप गया। मेरे शरीर में बल न रहा। सोचने लगा, यह क्या हो रहा है। अब तक स्टीला बैठी थी, एकाएक खड़ी हो गई। उसकी आँखें चमकने लगीं, जैसे भूला

हुआ पथिक रस्ता मिल जाने से प्रसन्न हो जाता है। उसने उँगली से एक कमरे की ओर इशारा किया, और मेरे हाथ में चाबियों का गुच्छा देकर कहा, "अंदर छिप जाओ। अवसर पाकर पिछली ओर का दरवाज़ा खोलकर निकल जाना। मुझसे इस समय कुछ न पूछो। मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं, सारी बात फिर कहूँगी।"

यह कहते कहते उसने मुझे अन्दर धकेल दिया और बाहर से ताला लगा दिया। मैं डरे हुए बच्चे की नाईं सहम गया। मुँह से एक शब्द तक न निकला। जिस प्रकार सोये हुए मनुष्य को उठाकर समुद्र में फेंक दिया जाए, तो वह जागने पर अपने आपको मृत्यु की गर्जती हुई लहरों में देखकर घबरा जाता है, उसी प्रकार मैं घबरा गया था। क्षण-मात्र में यह हो जाएगा, यह आशा न थी। प्रेम को फूलों की सेज समझकर आया था। यदि पहले सोचा होता कि इसमें काँटे भी होंगे तो यह दिन न आता। फूल देख चुका था, अब काँटों की बारी थी। थोड़ी देर के बाद मैं घबराने लगा, जैसे यहाँ वर्षों से बन्द हूँ। जी चाहता था दरवाज़ा तोड़कर निकल जाऊँ। बाहर कोई गाता हुआ जा रहा था। उसकी इस दशा पर ईर्ष्या हुई। कितना भाग्यवान् है, जहाँ चाहता है जाता है, पता नहीं कौन है, परन्तु उसे कोई भय, कोई शंका नहीं। स्वतंत्रता का मूल्य स्वतन्त्रता खोकर मालूम हुआ, यद्यपि केवल एक दो घण्टे की बात थी। मैं एक कुरसी पर

बैठ गया, और स्वतन्त्रता के क्षण की राह देखने लगा। इतने में किसी ने कहा, "मैं वापस आ गई। वकील ने मुझे तार दिया था।"

आवाज़ किसी बुढ़िया की जान पड़ती थी।

स्टोला ने उत्तर दिया—"कोई विशेष बात होगी। नहीं तो वह तार कभी न देता।"

"ऐसा ही मालूम होता है। मेरी वापसी से तुमने बुरा तो नहीं माना?"

"बेटी माँ का आना बुरा माने, यह कैसे हो सकता है?"

"नहीं, मैंने योंही पूछा था।"

"ऐसी बातें सुनकर मुझे आग लग जाती है।"

"माफ़ कर दो, फिर न पूछूँगी। ज़रा सामने के कमरे की चाबी देना।"

मेरे शरीर से पसीना छूटने लगा।

"क्या करोगी?"

"मेरा नाईट गौन अन्दर है।"

स्टोला ने उत्तर दिया, "तुम थकी हुई हो, आराम करो। मैं निकाल लाती हूँ।"

"नहीं, थकान काहे की। कौन सा पैदल सफ़र किया है जो पाँव नहीं उठते?"

"फिर भी बुड्ढी हो, सीढ़ियाँ चढ़ते चढ़ते ही दम फूल जाता है। मैं यह नहीं देख सकती।"

परन्तु बुड्ढी ने न माना, चाबी लेकर दरवाज़े की ओर चली। उसका आना मेरी मौत का आना था। मेरा दम रुकने लगा, चाहा कि उठ कर पिछली ओर का दरवाज़ा खोल कर निकल जाऊँ। परन्तु पाँव हार चुके थे। उठने की शक्ति न रही। बुढ्ढी दरवाज़ा खोलकर अन्दर आ गई। मैं एक कोने में छिपा था, परन्तु उसकी दृष्टि मुझ पर पड़ गई। होनहार को टालने की सामर्थ्य किसमें है। उसने ज़ोर से चीख़ मारी, और चिल्ला कर कहा, "चोर!"

मेरा लहू सूख गया। परिस्थिति ऐसा भयानक रूप धारण कर लेगी, यह स्वप्न में भी विचार न था। स्टीला को बचाव का उपाय सूझ गया। वह भाग कर बाहर निकल गई, और ज़ोर से चिल्लाने लगी, "चोर, चोर।"

यह सुन कर मैं इस तरह चौंक पड़ा जैसे आस्तीन से साँप निकल आया हो। मैंने स्टीला की रुखाई, धोखा, छल देखा था, परन्तु उससे यह आशा न थी, कि अपने चरित्र-यज्ञ पर मेरी आन की भेंट चढ़ा देगी। मेरे पाँव मन मन के भारी हो गये। मूर्त्ति की नाई खड़ा रह गया। इतना भी न हो सका, कि चाबियों का गुच्छा ही फेंक दूँ। इतने में पुलीस के एक सिपाही ने आकर मुझे गिरफ़्तार कर लिया। मैं दो घण्टे की क़ैद से घबरा रहा था, अब कई सालों की क़ैद सामने थी। परन्तु मुझे परवा न थी। मनुष्य की कृतघ्नता ने क़ैद के अपमान और दुख को कम कर दिया था। पीछे पता लगा,

कि वह बुढ़िया स्टीला की मौसी थी। और स्टीला के चचा वसीयत में लिख गये थे, कि स्टीला को उसकी इच्छा पर चलना होगा। स्टीला ने उसकी अप्रसन्नता का विचार किया, परन्तु मेरा विचार न किया।

(९)

ऐ भाई! मुझ पर मुक़द्दमा चलाया गया। समाचार-पत्रों को मज़मून मिल गया। मोटे मोटे अक्षरों में शीर्षक दे कर समाचार छापने लगे। कोई मुझे सभ्य चोर लिखता था, कोई हिन्दुस्तानी दिवालिया। कुछ पत्रों ने तो यहाँ तक लिख दिया कि मेरी आजीविका यही है। स्टीला से संवाददाताओं ने पूछा। उसने अपनी प्रतिष्ठा बचा ली, परन्तु मुझे बदनाम करने में कोई कसर न छोड़ी। कहा, कि मैं इस Indian (हिन्दुस्तानी) से सर्वथा नावाक़िफ़ हूँ। मैंने उसे इससे पहले कभी नहीं देखा। मेरा विचार है, वह केवल चोरी करने के लिए ही मेरे मकान में घुसा था। उसका और प्रयोजन क्या हो सकता है? मैंने यह पढ़ा, तो पैरों के नीचे से मिट्टी निकल गई।

दण्ड का विश्वास हो गया। मैंने अपने अँगरेज़ मित्रों को रो रोकर लिखा, कि मेरी सहायता करो। पर किसी ने उत्तर न दिया। लेकिन रूपचन्द इस घोर संकट में काम आये और मुझे ज़मानत पर छुड़ा कर ले आये। इसके पश्चात् मैंने कई दिन तक उन्हें आराम से बैठे नहीं देखा। दिन-रात मेरे मुक़द्दमे की तैयारियों में लगे रहते थे। उनकी अविश्रांत तत्परता को

देखकर मुझे संदेह होने लगता था, कि मुक़द्दमा मुझ पर नहीं ख़ुद उन पर है। वही काग़ज़ रखते थे, वही सफ़ाई तैयार कर रहे थे, वही गवाहियाँ बनाते थे, वही वकीलों के पास जाते थे। उनकी इस लगन ने मुझे बेपरवा बना दिया था। मैं सारा सारा दिन देवकी के पास बैठा रहता था। तब मुझे उसके आत्म-गौरव का ज्ञान हुआ। उसे मैंने कभी मेरी कोरिली, रेनाल्डूस, विक्टर ह्यूगो और एलैग्ज़ैण्डर डूमा के उपन्यास पढ़ते नहीं देखा। वह उन्हें पसन्द न करती थी। वह रामायण और गीता पढ़ती थी। इन पुस्तकों में रेनाल्डूस के उपन्यासों के से चक्कर नहीं, न डूमा के से हेरफेर हैं। परन्तु इनमें मानव-जीवन के ऐसे पवित्र और उच्चादर्श दिखाये गये हैं कि मैं सुनकर उछल पड़ा। पश्चिम के समस्त साहित्य को इस अकेली पुस्तक से वही तुलना है जो एक तुच्छ परमाणु को भगवान् सूर्य्य से है। मैं अँगरेज़ी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकों की सर्वोत्तम पुस्तकों को इस अकेली पुस्तक पर निछावर कर सकता हूँ। मुझे यह आशा न थी, कि भारतवर्ष में ऐसी पुस्तकें भी हैं। देवकी को सीता का चरित्र बहुत पसन्द था। उसका नाम सुनकर उसकी आँखों में आँसू आ जाते थे। और वह केवल पढ़ती न थी, जो कुछ पढ़ती उसे अपने जीवन में धारण भी करती थी। वह बड़ी नम्र, कोमल-स्वभाव, विशुद्ध-हृदय, साधु-प्रकृति और ज्योतिर्मयी स्त्री थी। उसे देख कर मुझे भारत पर अभिमान होने लगता था। उसने मुझे

कभी पिछले किये हुए पापों पर दोष नहीं दिया। कभी मेरी भूलों का प्रकरण नहीं छेड़ा। वह इस बात को सभ्यता से गिरा हुआ समझती थी। मैं उसके जितना समीप होता जाता था, वह उतनी ही अधिक पवित्र और शुद्ध मालूम होने लगी। जी चाहता था उसके पैरों से लिपट जाऊँ—वह नारी नहीं देवी थी। उसकी मातृ-करुणा पर मेरा दिल लोट-पोट हो गया।

ऐ भाई! मुक़द्दमे का फ़ैसला हुआ। रूपचन्द के प्रयत्न फलीभूत हुए। मैं छूट गया। और इतना ही नहीं, स्टोला पर उलटा मुक़द्दमा चला। उसने एक भले मनुष्य की मानहानि की थी। उसे पचीस पौण्ड जुर्माना हुआ। यह पचीस पौण्ड मेरी प्रतिष्ठा का मूल्य था। मैंने रूपचन्द का धन्यवाद किया। उसके साथ मेरा कोई नाता न था, कोई सम्बन्ध न था। उसने केवल भारतीय होने के कारण मुझ पर उपकार किया था। यह नाता मित्रता और लहू के नाते से भी दृढ़ है, यह जन्मभूमि का नाता है।

मेरे हृदय में पति-पत्नी दोनों के लिए कृतज्ञता-भाव ने घर कर लिया। मैं एक को देवता समझता था, दूसरे को देवी। मैं अपने हृदय-मन्दिर में उनकी पूजा करता था। मनुष्य इतना निःस्वार्थ, इतना नेक, इतना कोमल-स्वभाव हो सकता है, इसकी मुझे आशा न थी। उन्हें बाज़ार में जाते देखकर ऐसा प्रतीत होता था, जैसे कौओं में दो राजहंस जा रहे हों। मेरा मेल-जोल उनसे बढ़ने लगा। पहले वह मेरे पास आया

करते थे, अब मैं उनके यहाँ जाने लगा। यदि एक दिन भी न जाता, तो मन उदास हो जाता, जैसे किसी आवश्यक कर्तव्य को पूरा न किया हो। और यह मेरी ही दशा न थी, वह भी मुझे घर का आदमी समझने लगे थे, और प्रत्येक विषय में मुझसे सम्मति लिया करते थे।

एक दिन मैं और देवकी सैर को गये। आकाश पर बादल लहरा रहे थे। देवकी बार-बार आकाश की ओर देखती थी। शायद उसको भय था, कि कहीं वर्षा न होने लगे। परन्तु मुझे इसकी परवा न थी। हमने एक नौका किराये पर ली, और समुद्र की सैर करने लगे। देवकी उस समय भी हिचकिचा रही थी, परन्तु उसने अपने मन की बात मुझ पर साफ़ साफ़ प्रकट न की। कदाचित् उसको डर था, कि मैं नाराज़ न हो जाऊँ। नौका समुद्र की लहरों पर नाचती हुई आगे बढ़ी। हम जल-क्रीड़ा देखने में तन्मय हो गये। इस अवस्था में कितना समय बीत गया, मैं कुछ नहीं कह सकता। हम किनारे से बहुत दूर आ गये थे। एकाएक वृष्टि होने लगी। इस वृष्टि ने हम पर वही काम किया, जो जल के छींटे गहरी नींद में अचेत सोनेवालों पर करते हैं। हम चौंक पड़े। तट की ओर आँखें उठाईं तो कलेजा निकल गया। सोचने लगे, अब क्या होगा। वायु प्रबल वेग से चल रही थी, और नाविक की सारी चेष्टाएँ निष्फल हो रही थीं। उसके किये कुछ बनता न था। समुद्र की भयंकर तरंगों के सामने उसकी कुछ पेश न जाती

थी। मैं घबरा गया, मगर देवकी के मुख-मण्डल पर अशान्ति न थी। वह उस समय भी ऐसी ही प्रसन्न थी, जैसे अपने घर में बैठी हो। मुझसे बोली, "अब घबराने से क्या होगा। जो होता है देखते जाओ, और परमात्मा पर भरोसा रक्खो।"

मेरे हृदय में तीर सा चुभ गया। सोचा, यह स्त्री है परन्तु फिर भी तूफ़ान में शान्त बैठी है। मैं पुरुष हूँ, परन्तु हृदय थरथरा रहा है। इसकी तह में क्या बात काम कर रही है? केवल यही कि उसे परमात्मा पर भरोसा है, मुझे नहीं। ऐ भाई. इस विषय में पश्चिम परमात्मा से विमुख है। पश्चिम का निवासी अपने बाहु-बल पर भरोसा करता है, और परमात्मा को ललकार बैठता है। परन्तु उस पर भरोसा नहीं करता। वह इसे मूर्खता समझता है।

नौका हिलकोरे खाने लगी। मेरा मन भी उसी प्रकार हिलकोरे खा रहा था। देवकी ने अपने आपको परमात्मा की इच्छा पर छोड़ दिया था। परन्तु मुझमें यह शक्ति न थी। मैं जल की ओर और उसकी मृत्यु से भी अधिक भीषण तरङ्गों की ओर देखता था, और काँपता था। एकाएक एक लहर ने नौका को उलट दिया।

(१०)

ऐ भाई! मल्लाह अपनी जान बचा कर निकल गया, परन्तु हम मृत्यु के मुँह में थे। मैंने साहस नहीं हार दिया। मैं समुद्र की भयानक लहरों के साथ संग्राम करने

लगा। मुझे इतना अपना ख़याल न था। मैं चाहता था, किसी तरह देवकी बच जाये। उसके और उसके पति के उपकार मेरे सामने आ गये थे। मैं हाथ-पाँव मारने लगा, परन्तु देवकी कहीं दिखाई न दी। मैंने चारों ओर देखा, दूर दूर तक दृष्टि दौड़ाई, पर उसका पता न लगा। मैं निराश हो गया। सहसा कोई वस्तु मेरी ओर आती दिखाई दी। मेरे आनन्द का पारावार न रहा। यह देवकी थी। मैं उसकी ओर बढ़ा, और उसे एक हाथ से पकड़ कर दूसरे हाथ से जल को चीरता हुआ किनारे की ओर तैरने लगा।

परन्तु वहाँ तक पहुँचना आसान न था। मेरा दम फूल गया। हाथ-पाँवों में शक्ति न रही। अथाह सागर की ओर देख कर हृदय बैठा जाता था। परन्तु देवकी का ख़याल मेरा साहस बढ़ाये जाता था। मृत्यु और जीवन साथ साथ खड़े थे। मैं हाथ मारता गया। देखने में ऐसा मालूम होता था, कि मेरी चेष्टाएँ कभी सफल न होंगी। एकाएक मैंने देखा, तट समीप है। मरे हुए शरीर में प्राण आ गये, टूटा हुआ साहस बँध गया। मैंने अपने शरीर और आत्मा की सम्पूर्ण शक्ति लगा दी, और देवकी को लेकर किनारे पर चढ़ गया।

ऐ भाई! हम मृत्यु के मुख से निकल आये थे, परन्तु अभी तूफ़ान के मुख से न निकले थे। मैं आश्रय की जगह ढूँढ़ने लगा। देवकी को हाथों पर उठाये हुए मैं चारों ओर दौड़ रहा था। हाथ थक चुके थे, पाँव

चलने से हार गये थे, परन्तु मैं फिर भी चल रहा था। यह साहस-संग्राम न था, जीवन-संग्राम था। अन्त में एक प्राचीन काल का झोंपड़ा मिल गया। इस झोंपड़े की दीवारें टूट फूट चुकी थीं, फ़र्श जहाँ तहाँ से उखड़ गया था, परन्तु इस भयानक वर्षा और तूफ़ान के समय यह झोंपड़ा किसी राज-महल से कम न था। मैं झटपट अन्दर चला गया। एक ओर घास के अंबार लगे हुए थे। मैंने उसे भूमि पर बिछाकर एक गुदगुदा बिस्तरा तैयार किया और उस पर देवकी की मूर्छित देह को लिटा दिया।

वर्षा हो रही थी। मैं झोंपड़े से बाहर निकला और गिरते-पड़ते साथ के गाँव में पहुँचा। यहाँ से कुछ दूध ख़रीदा, कुछ डबल-रोटियाँ। कोयलों और कंबलों के लिए रुपये दे आया। मज़दूरों ने यह सब सामान झोंपड़े में पहुँचा दिया। अब यह एक किसान का घर बन गया था। मैंने चाय तैयार की, और देवकी को उठाकर बिठा दिया। उसके मुख का रंग उड़ा हुआ था, आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई थी। वह चाहती थी, कि जैसे भी हो सके, रूपचन्द के पास पहुँच जाएँ। परन्तु मूसलाधार वृष्टि ने रस्ता रोक रक्खा था। यहाँ तक कि तीन दिन के बाद वर्षा थमी। मैंने गाँव में जाकर एक गाड़ी का प्रबन्ध किया और देवकी को लेकर लिवरपूल की ओर चला।

रस्ते में देवकी बोली, "वह मुझ पर नाराज़ हो रहे होंगे।"

"परन्तु इसमें तुम्हारा दोष ही क्या है ? इस भयानक तूफ़ान में बाहर निकलना आसान न था।"

"घबरा रहे होंगे।"

"अब शीघ्र पहुँच जाओगी।"

"बिना पूछे निकल आई थी। भविष्य के लिए कान हो गये।"

इसका मैंने कुछ उत्तर न दिया। मन में सोचने लगा, रूपचन्द को कुछ संदेह तो न हो जाएगा। देवकी तीन दिन मेरे पास रही है, और अकेली, शहर से बाहर एक झोंपड़े में। ऐसी अवस्था में संदेह होना आश्चर्य नहीं। यदि रूपचन्द के हृदय में कोई शंका बैठ गई, तो देवकी का जीवन नष्ट हो जाएगा। वह इसे सहन न कर सकेगी। मैं चिन्ता में लीन हो गया। थोड़ी देर के बाद बोला :—

"जब वह पूछेंगे, कहाँ रही हो, तो क्या कहोगी ?"

"जो यथार्थ बात है, वही कहूँगी।"

मैं चौंक पड़ा। मैं उसके मुँह से यह उत्तर सुनने के लिए तैयार न था। मैं कुछ कहना चाहता था, परन्तु किसी अदृष्ट शक्ति ने मेरी जीभ पकड़ ली। कदाचित् मुझे अपनी पवित्रता पर वह विश्वास न था जो देवकी को अपनी पवित्रता पर था। मैंने धीरे से कहा, "यह कहना अनुचित तो न होगा।"

देवकी अपने स्थान से उछल पड़ी, जैसे उसके कान के पास किसी ने बन्दूक़ चला दी हो। उसका मुख तपे हुए लोहे की नाईं लाल हो गया। घबराकर बोली, "क्या तुम्हारा यह अभिप्राय है, कि वह मुझ पर संदेह करने लगेंगे?"

"हाँ, परिस्थिति ऐसी हो गई है, कि वह संदेह कर सकते हैं।"

"परन्तु मुझे यह आशा नहीं। वह मुझे अच्छी तरह जानते हैं।"

"तो साफ़ साफ़ कह दो।"

"परन्तु यदि उन्होंने विश्वास न किया तो—"

देवकी की आँखों में आँसू आ गये। हाथ मलते हुए बोली, "मैंने बुरा किया है। मेरे कानों में कोई कह रहा है, कि इसका परिणाम अच्छा न होगा।"

मैंने कुछ देर तक सोचा और फिर कहा, "मुझे एक युक्ति सूझी है, कहो तो कह दूँ।"

"मैं समझ गई, कहिए।"

"झूठ बोलना होगा।"

"जी चाहता है, कुछ खा लूँ। उनके सामने आँखें न उठेंगी। अब तुम्हारी सम्मति में मुझे क्या कहना चाहिए।"

"कह दीजिए, मैं ज़रा अपनी सहेली कैथराईन नानसी के यहाँ चली गई थी। दैवयोग से तूफ़ान ने आ घेरा। तीन दिन

तक वहीं पड़ी रही। वर्षा के मारे बाहर पाँव रखना कठिन था। अब कुछ कम हुई है तो आ गई हूँ।"

देवकी के मुख से मालूम होता था, कि वह इस असत्य-भाषण को तैयार नहीं है। वह भारत-देश की श्रद्धा-पूर्ण महिला थी, जो अपने पति की पूजा करती हैं और उसे परमात्मा समान समझती हैं। उसने कभी पति से झूठ न बोला था। वह इसे पाप समझती थी। यह उसके जीवन में पहला अवसर था। अंतः-करण अनसिधे हुए घोड़े की तरह सरकशी कर रहा था। कुछ देर तक यह देवासुर-संग्राम होता रहा। आखिर असुरों की विजय हुई। देवकी ने मेरी युक्ति मान ली और अपने मकान के पास पहुँच कर गाड़ी से उतर गई। मैं अपने होटल को चला आया।

(११)

ऐ भाई! रूपचन्द घबराये हुए थे। देवकी को पाकर उन्हें ऐसी प्रसन्नता हुई जैसे किसी को डूबा हुआ धन मिल जाय। उन्हें देवकी के कथन पर तनिक भी संदेह न हुआ। उन्हें यह कल्पना भी न थी, कि देवकी उनसे झूठ बोल सकती है। उसकी बात सुन कर उन्होंने और कोई प्रश्न नहीं किया। वह संपूर्ण रूप से संतुष्ट थे। परन्तु देवकी का संतोष और शान्ति दोनों नष्ट हो गये। वह सदा सशंक रहने लगी। सोचती थी, मैंने उनसे क्यों झूठ बोला। उसके शब्द "मैं अपनी सहेली कैथराईन नानसी के यहाँ थी" प्रति क्षण उसके मस्तिष्क में पाप-स्मृति की तरह डङ्क मारते रहते थे। वह चाहती थी,

कि किसी प्रकार यह शब्द वापस ले लूँ। परन्तु आँख से गिरा हुआ आँसू और पिँजरे से छुटा हुआ पंछी कहाँ लौटता है ? वह प्राय: मुझसे कहती, जो चाहता है, उनके पैरों से लिपट कर अपने पाप को स्वीकार कर लूँ। उनका हृदय करुणा का स्रोत है; मुझे तत्काल क्षमा कर देंगे। परन्तु मैंने प्रत्येक बार उसके शिव-संकल्प को दबा दिया। कहा, अब यह भूल भयानक होगी। उन्हें अवश्य संदेह हो जाएगा। यह संदेह तुम्हारे जीवन और सुख को इस प्रकार निगल जाएगा, जिस प्रकार तूफ़ानी नदी की गर्जती हुई लहरें हरे-भरे खेतों को निगल जाती हैं। जिन चला जाता है पर जन नहीं जाता। अब सोचता हूँ, तो रोता हूँ, कि मैंने उसे यह कुमति क्यों दी। परन्तु भूल यहीं पर समाप्त नहीं हो गई। प्राय: हमारी बात-चीत में रूपचन्द अन्दर आ जाते। मैं और देवकी दोनों अनाड़ी थे। हमने झूठ बोला, पर उसे अंत तक निभाने में समर्थ न थे। रूपचन्द को देखकर हम इस प्रकार चुप हो जाते जैसे चोर अपनी चोरी को छिपाता है। इस समय देवकी अपनी सहमी हुई आँखों से अपने पति की ओर देखती और सिर नीचे झुका लेती। मुख का भाव छिपाना सुगम है परन्तु आँखों के भाव छिपाना सुगम नहीं। इन आँखों ने काम बिगाड़ दिया। रूपचन्द को संदेह होने लगा।

मगर यह संदेह संदेह ही न रहा, विश्वास की सीमा तक पहुँच गया। एक दिन बाज़ार में कैथराईन नानसी और

रूपचन्द से भेंट हो गई। कोई आध घंटे तक बातें होती रहीं, घर आये तो नाग की नाईं फूँकारे मार रहे थे। उस समय उनके नथने फूले हुए थे, आँखों से आग के चिङ्गारे निकल रहे थे। देवकी से त्योरी चढ़ाकर बोले, "देवकी! मुझे तुझसे यह आशा न थी। मैं तुझे देवी समझता था, और तेरी सौगन्ध खाता था। मैं समझता था, सब कुछ हो सकता है, यह नहीं हो सकता। परन्तु मुझे यह पता न था कि स्त्री पर विश्वास करना परले दर्जे की मूर्खता है। तूने मेरी आँखें खोल दी हैं।" जिस प्रकार विषधर सर्प का विष देखते देखते रोम रोम में फैल जाता है, उसी प्रकार रूपचन्द के इन शब्दों का प्रभाव देवकी के प्रत्येक रक्तबिन्दु में फैल गया। यह शब्द न थे, शब्द-शर थे। वह कुछ न बोल सकी। सोफ़े से उठी, परन्तु लड़खड़ा कर गिर पड़ी। यह मूर्छा देवकी के पाप की स्वीकृति थी।

(१२)

ऐ भाई! जब देवकी को सुध आई, तो रूपचन्द वहाँ न थे। वह मेज़ की ओर दौड़ी। वहाँ यह पत्र पड़ा था:—

देवकी! तूने मेरा दिल तोड़ दिया है। मुझे भारतीय स्त्री पर श्रद्धा थी। मैं उसकी पूजा करता था। तूने मेरा यह विश्वास भंग कर दिया है। मुझे तुझसे यह आशा न थी। तू तीन दिन घर से बाहर रही, और तूने मुझे कहा, कि मैं कैथराईन नानसी के यहाँ थी। परन्तु तेरी आँखों ने तेरा भेद खोल

दिया। मुझे संदेह होने लगा। मगर मैंने उसे प्रकट नहीं किया। मुझमें यह साहस न था। मैं समझता था, यह तुझ पर, तेरे आत्माभिमान पर, तेरे आचार पर अत्याचार करना है। परन्तु जब कैथराईन नानसी ने कहा, कि उसे तुझसे मिले महीनों बीत गये हैं, तो मेरा संदेह विश्वास के रूप में बदल गया। जी चाहता है, समुद्र में कूद कर मर जाऊँ। जीवन में कोई आनन्द, कोई उल्लास, कोई रस नहीं रहा। अब जीता रहने से क्या होगा ?......।

रूपचन्द।

देवकी ने ठंडी साँस भरी और कौच पर लेट गई। इस समय उसके हृदय में सहस्रों विचार उठ रहे थे, जिस प्रकार वर्षा ऋतु में शाम को छोटे छोटे कीड़े उड़ने लगते हैं। यह कीड़े कितना कष्ट देते हैं, कितना व्याकुल कर देते हैं। उन्हें देख कर चित्त घबरा उठता है। वह मनुष्य का अनिष्ट नहीं कर सकते, परन्तु उसका उठना-बैठना कठिन कर देते हैं। यही अवस्था देवकी की थी। वह उन विचारों से घबरा रही थी। परन्तु मैं कुछ ऐसा निराश न था। समाचार-पत्रों में विज्ञापन दिये, सुहृद् मित्रों को तार भेजे। देवकी सारा सारा दिन प्रतीक्षा करती रहती थी। सोचती, आज अवश्य कोई समाचार आएगा। दिन चढ़ता और ढल जाता, परन्तु कोई समाचार न मिलता। देवकी ठण्डी साँस भरती और भूमि पर लेट जाती। इसी प्रकार कई मास व्यतीत हो गये।

उसका खाना-पीना छूट गया। पहरने की सुध न रही। उसे देख कर मेरे कलेजे पर छुरियाँ चल जाती थीं। सोचता था, यह सब मेरी ही करतूत है। उसका शरीर मुर्झा गया था, केवल अस्थि-पञ्जर शेष था। न मुख पर रौनक़ थी न आँखों में चमक। परन्तु उसका तेज वैसे का वैसा ही था। मुझे उसकी ओर देखने का साहस न होता था। सती की आँख में आग होती है, वह जिस पर पड़ती है, उसे जलाकर राख कर देती है। मैं उस आग से इस प्रकार डरता था, जिस प्रकार हिरन का बच्चा धनुष ताने हुए व्याध से डरता है। मैं देवकी की सुध लेने प्रति दिन जाता था, परन्तु सहमा सहमा सा रहता था। डरता था, कि कहीं उसकी आँखें मेरी आँखों से दो चार न हो जाएँ। उसके संयम ने मेरे हृदय में श्रद्धा का भाव उत्पन्न कर दिया था। मैं पहले उसे देवी समझता था, अब महादेवी समझने लगा। मैंने यूरोप की सहस्रों विरहिणी स्त्रियों को देखा है। पति-वियोग की अंधेर-रात्रि में उनकी चाल-ढाल में कभी अन्तर नहीं आता। वह उसी प्रकार हँसती हैं, उसी प्रकार खेलती हैं। उनके खान-पान में, रहन-सहन में, बनाव-सिङ्गार में कोई कमी नहीं होती। परन्तु देवकी का पति नहीं गया, उसकी सकल सृष्टि चली गई। उसके पश्चात् किसी ने उसके होंठों पर मुस्कराहट नहीं देखी। कमरे में बहुत बढ़िया सामान था, उसे उठवा दिया और महाकंगालों के समान रहने लगी। राम के विरह में जो दशा भगवती सीता की हो

गई थी, वही दशा अब देवकी की थी। वह पावन कथा मुझे स्वयं देवकी ने सुनाई थी। परन्तु उसे यह ज्ञान न था, कि इस घटना को कार्य्यरूप में भी मेरे सामने उसे ही रखना होगा।

अब मेरे मन की एक ही अभिलाषा थी, और वह यह कि जैसे भी हो अपनी भूल का सुधार करूँ, और रूपचन्द को ढूँढ़ कर देवकी के हवाले कर दूँ। सोचता था, उस दिन हर्ष से पागल हो जाऊँगा। संसार में लाखों सुख हैं, परन्तु दो बिछड़ी हुई पवित्र आत्माओं को मिला देना सबसे बड़ा सुख है। यह पवित्र दृश्य, यह आध्यात्मिक मिलाप, यह नैतिक सुषमा देख कर हृदय को कौन सँभाल सकता है? ज्यों ज्यों दिन व्यतीत होते गये, यह अभिलाषा किसी प्रेमी की उद्विग्नता के समान बढ़ती गई, यहाँ तक कि रात की नींद भी उड़ गई। "तू अपने कर्त्तव्य-पालन में आलस्य करता है" यह शब्द कानों में गूँजने लगे। यह कोई झूठी आवाज़ न थी। यह कोई कल्पित ध्वनि न थी। यह परमात्मा की वाणी थी। इसने मुझे सन्मार्ग दिखा दिया। मैं कुछ दिन सोचता रहा। अंत में दृढ़ संकल्प कर लिया, और रूपचन्द की खोज में निकला। पश्चिम के प्रकृति-पुजारी लोग मुझ पर हँसेंगे परन्तु मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता, कि यह प्रेरणा ईश्वरीय प्रेरणा थी।

मैंने फ्रांस, जर्मनी, स्विटज़रलैण्ड में, वहाँ के थियेटरों,

लैक्चरघरों और पर्वतों में खोज की, परन्तु रूपचन्द का पता न मिला। स्विटज़रलेण्ड में उनके मिल जाने की बड़ी आशा थी, परन्तु वहाँ भी सफलता न हुई। मेरा मन निराश हो गया, जिस प्रकार विद्यार्थी बार बार फ़ेल होकर निराश हो जाता है। मैंने देवकी को पत्र लिखे और उनमें अपनी असफलता की सारी कहानी लिख दी। देवकी ने उन पत्रों का कोई उत्तर न दिया, पर बहुत सा रुपया भेज दिया, जिससे मैं खोज करता जाऊँ।

मैं अमरीका पहुँचा। यहाँ रामकृष्ण मिशन की ओर से कई विशाल मन्दिर खड़े हैं। वहाँ वेदान्त-गोष्ठी होती है, ज्ञान-ध्यान के तत्त्व वर्णन किये जाते हैं, दिन-रात ज्ञान-गंगा बहती है। मेरा हृदय आनन्द से उछलने लगा। आशा हुई, अब सफलता दूर नहीं। रूपचन्द इन्हीं मन्दिरों में से किसी एक में होंगे। मनुष्य संसार लुटा बैठता है तो उसे धर्म की सुध आती है। मैं जहाँ तहाँ घूमने लगा। जहाँ जहाँ वेदान्त-मन्दिर थे, सब स्थानों पर पहुँचा और उनकी खोज की। अन्त में पता लगा, कि वह केलिफ़ोरनिया में हैं—वहाँ उनकी पूजा होती है। मैं उड़ता हुआ वहाँ पहुँचा। वेदान्त-मन्दिर देख कर चित्त प्रसन्न हो गया। परन्तु वह वहाँ भी न थे। चौकीदार से पूछा, तो मालूम हुआ, कि उन्होंने बस्ती से बाहर एक कुटिया बना रखी है। इस कुटिया का नाम "आनन्द-भवन" है। प्राय: उसी में रहते हैं, और ज्ञान-ध्यान में लीन रहते हैं।

रात हो गई थी, जब मैं "आनन्द-भवन" में पहुँचा। अन्दर जाते ही उनका प्रशान्त, प्रकाशमय, प्रेम-पूर्ण मुख-मण्डल दिखाई दिया। इस समय वे संन्यासी के वेश में थे। मैंने उन्हें बढ़िया से बढ़िया वेश में देखा था, उस समय वह प्रतापी राजकुमार दिखाई पड़ते थे। परन्तु इन भगवे वस्त्रों में वह ऐसे तेजस्वी, ऐसे गम्भीर, ऐसे महात्मा दिखाई देंगे, यह विचार न था। वह एक चौकी पर बैठे थे और वेदान्त-विषय पर वार्तालाप कर रहे थे। उनके सामने केलिफ़ोरनिया के बड़े बड़े विद्वान् टोपियाँ उतारे श्रद्धा-भाव से सिर झुकाये बैठे थे, और उनके आत्म-ज्ञान पर चकित हो रहे थे। पश्चिम पूर्व के चरणों में लोट रहा था।

एकाएक उनकी दृष्टि मुझ पर पड़ी, तो मुख का रङ्ग और भी चमकने लगा, जैसे कभी कभी बिजली के लैम्प में विशेष प्रकाश आ जाता है। मैं आगे बढ़कर उनके चरणों में गिर पड़ा। इस समय मेरे हृदय में भक्ति-सागर उमड़ा हुआ था। देर तक बातें होती रहीं। यहाँ तक कि रात आधी से अधिक बीत गई, और मैं दूसरी शाम को मिलने की प्रतिज्ञा करके अपने होटल को वापस हुआ। परन्तु रात को नींद न आई, उसका स्थान प्रसन्नता ने ले लिया था। प्रातःकाल उठते ही मैंने देवकी को सामुद्रिक तार दिया और उसे रूपचन्द के मिल जाने की सूचना दी। इसके बाद शहर की सैर की। दोपहर को खाना खाया और कुछ विश्राम किया, यहाँ तक कि शाम

हो गई और मैं रूपचन्द के "आनन्द-भवन" की ओर रवाना हुआ। इस समय मेरे पैर भूमि पर न पड़ते थे। रूपचन्द के दर्शन की उत्कण्ठा ने उन्हें पर लगा दिये थे। उद्गारों के आकाश में उड़ा चला जाता था। परन्तु वहाँ पहुँच कर दिल बैठ गया। वहाँ पोलीस खड़ी थी। "आनन्द-भवन" में शोक का सन्नाटा छाया हुआ था। आगे बढ़कर पूछा तो मालूम हुआ कि रात को एक स्त्री की हत्या हो गई है। पोलीस को संदेह है कि यह हत्या रूपचन्द ने की है।

(१३)

ऐ भाई! यह सुनकर मेरा कलेजा हिल गया। ब्याह-वाले घर में दूल्हा की अचानक मृत्यु से जो दशा हो सकती है, वही दशा मेरे हृदय की थी। मुझे इस पर विश्वास नहीं होता था। लोग कानों की अपेक्षा आँखों पर अधिक विश्वास करते हैं। मैं यदि यह घटना अपनी आँखों से देख लेता, तब भी यही समझता, कि यह मेरी आँखों का धोखा है, बुद्धि का विकार है, पर रूपचन्द का दोष नहीं। मैं सब कुछ मान सकता था, परन्तु रूपचन्द ने हत्या कर डाली है, यह नहीं मान सकता था। मेरे लिए यह असंभव था। पर इससे क्या होता था। मुक़दमा शुरू हुआ; अमरीका भर में कोलाहल मच गया। रूपचन्द को केलिफ़ोरनिया गये थोड़ा ही समय हुआ था, परन्तु उन्होंने अपनी मधुर वाणी, पावन चरित्र और आत्म-ज्ञान से लोगों को मुग्ध कर लिया था। समाचार-पत्रों में उन्हें

भारतीय महात्मा के नाम से याद किया जाता था। न्यूयार्क के प्रसिद्ध समाचार-पत्र ट्रिब्यून (Tribune) में उनके कई व्याख्यान छपे थे, और बड़ी प्रशंसा के साथ। लोग उन्हें धर्म-गुरु समझने लगे थे। यह समाचार वन की आग के समान चारों ओर फैल गया। मैंने अपनी ओर से पूरा पूरा यत्न किया, परन्तु सफलता न हुई। अदालत की कार्य्यवाही देख कर कलेजा धड़क जाता था, आशा की कोई भी किरण दिखाई न देती थी। मुक़दमा साफ़ था, उसमें कोई पेच न था। वह स्त्री जिसकी हत्या की गई थी केलिफ़ोरनिया के एक प्रसिद्ध व्यापारी की बेटी थी। उसे रूपचन्द से प्रेम था। इस प्रेम ने उसे उनकी दासी बना दिया था। वह प्राय: उनके आनन्द-भवन में आती-जाती रहती थी। उस दिन भी गई, परन्तु उदास थी। उसी शाम को यह घटना हुई। रूपचन्द का बयान था, कि मैं भवन से बाहर था। एकाएक मैंने चीख़ की आवाज़ सुनी। दौड़ कर अन्दर गया तो लूसी तड़प रही थी, और उसके कलेजे में छुरी आधी से अधिक उतर गई थी। मैंने आगे बढ़कर वह छुरी उसके कलेजे से निकाल ली। मेरे कपड़े लहू से भीग गये। इतने में पोलीस आ गई, और मुझे पकड़ लिया गया। इसके सिवा मुझे और कुछ भी पता नहीं।

ऐ भाई! मुझे रूपचन्द के बयान पर पूरा पूरा विश्वास था। मेरे पास उन पर संदेह करने का कोई कारण न था। परन्तु

अदालत को इस बयान पर विश्वास न हुआ। महीनों बहस होती रही। अन्ततः फ़ैसले का दिन आ गया। उस दिन अदालत दर्शकों से खचाखच भरी हुई थी। लोग अमरीका की सर्वोत्तम एक्ट्रेसों को देखने के लिए भी कभी इतने उत्सुक न हुए होंगे। समाचार-पत्रों के रिपोर्टर कैमरे लेकर आये थे, और रूपचन्द का फ़ोटो लेने के लिए अधीर थे। परन्तु रूपचन्द के मुख पर कोई चिन्ता, कोई आशंका, कोई व्यग्रता न थी, जैसे उनका मुक़दमे के साथ कोई सम्बन्ध ही न हो। मैंने उनकी ओर देखा, परन्तु आँखें न मिल सकीं—यह सब मेरी करतूत थी।

इतने में ज्यूरी ने फ़ैसला सुनाया। लोगों के दम रुक गये, जैसे प्राण होंठों तक आ गये हों। चारों ओर निःस्तब्धता थी। "जुर्म साबित है। इसलिए अपराधी को दण्ड दिया जाता है कि उसे गर्दन से रस्सा बाँध कर लटकाया जाए, जब तक कि उसकी जान न निकल जाए।"

मेरे कलेजे पर मानों किसी ने गर्म सुलाख़ रख दी। पैरों तले से धरती खसकने लगी। ऐसा जान पड़ता था जैसे आकाश गिरने को है। एकाएक कोई प्राणी भीड़ को चीरता हुआ आगे बढ़ा, और अदालत के निकट पहुँच गया। जिस प्रकार नाटक में कोई आश्चर्यजनक घटना देखने के पश्चात् उससे भी बढ़कर आश्चर्यजनक घटना देखकर मनुष्य सन्नाटे में

आ जाता है, उसी प्रकार मैं इस मनुष्य को देखकर सन्नाटे में आ गया—यह देवकी थी।

वह जज के पास पहुँच गई, और धीरे से परन्तु धैर्य्य के साथ बोली, "यह निर्दोष है। हत्या मैंने की है। इसे दण्ड न दो। वह नर-हत्या थी यह न्याय-हत्या होगी।"

अदालत में शोर मच गया। लोगों की आँखों में आँसू भरे हुए थे। सोना जब गर्म होता है, तो पानी बन कर बह जाता है। यह पानी साधारण पानी न था, सोने और चाँदी का पानी न था, यह हार्दिक भावों का पानी था। ज्यूरी के मेम्बर चौंककर खड़े हो गये। सरकारी वकील आश्चर्य्य से हाथ माथे पर फेरने लगा। रूपचन्द मृत्यु-दण्ड की आज्ञा सुनकर न घबराये थे, परन्तु देवकी के इन वचनों ने उनके होंठ सुखा दिये। वह उसकी ओर इस प्रकार देखने लगे, मानों पागल हो गये हों।

अदालत ने पूछा, "तू कौन है?"

"अपराधी की स्त्री।"

अदालत कुछ देर तक चुप रही और तब

कोर्ट इन्स्पेक्टर से कहा, "गिरफ़ार कर लो। मुक़द्दमा नया रङ्ग पकड़ने को है।"

यह गिरफ़ारी देवकी की मृत्यु की पूर्व-सूचना थी। परन्तु दे की को इसकी परवा न थी। प्रत्युत वह इस समय इतनी

प्रसन्न थी, जैसे किसी दुर्भिक्ष-पीड़ित मनुष्य को अकस्मात् दबा हुआ ख़ज़ाना मिल गया हो। यह प्रसन्नता उसके मुख से, आँखों से, और हाव-भाव से प्रकट होती थी।

(१४)

ऐ भाई! देवकी ने अपने आपको मृत्यु के मुख में देकर अपने पति को छुड़ा लिया। परन्तु इससे रूपचन्द प्रसन्न नहीं हुए। वह अब प्रतिक्षण दुखी रहते थे। वकील ऋण चुकाने-वालों की झूठी प्रतिज्ञाओं की तरह बार-बार पेशियाँ भुगतने लगे। अदालत की कार्यवाही नये सिरे से आरम्भ हुई। रूपचन्द चाहते थे, जिस प्रकार भी हो सके, देवकी को छुड़ा लें। परन्तु यह आसान न था। देवकी ने अपने आप अपराध स्वीकार कर लिया था। उसने जो बयान दिया, उसमें साफ़ साफ़ कह दिया, कि यह हत्या मैंने की है। मेरा पति मुझसे रूठ कर यहाँ चला आया था। मैं उसका वियोग सहन न कर सकी, यहाँ आ गई। परन्तु पति के सामने आने का साहस न हुआ, दिलों में अन्तर आ गया था। यहाँ आकर मुझे संदेह हुआ, कि लूसी को मेरे पति से प्रेम है। मैं यह सहन न कर सकती थी। मैं अपने प्राण दे सकती थी, परन्तु पति और पति का प्रेम न दे सकती थी। मुझे विष चढ़ गया, हृदय और मस्तिष्क दोनों खौलने लगे। मैंने उसे एक दो बार समझाया, परन्तु उसने मेरी बात पर ध्यान न दिया। बोली, मैं अब इसके बिना रह नहीं सकती। मैं क्रोधोन्मत्त हो कर

अपने पति की कुटिया में गई, कि उन्हें उस कुटिला और उसके आचार के विषय में सब हाल कह दूँ। परन्तु वहाँ पहुँच कर क्या देखती हूँ, कि वहाँ लूसी बैठी है। मेरा पागलपन और भी बढ़ गया। मैंने जोश की हालत में मेज़ से छुरी उठा ली, और उस पर वार किया। छुरी कलेजे में उतर गई। अब मेरी आँखें खुलीं। सोचा, मैंने क्या कर दिया। परन्तु सोचने का समय न था। भगवान् जाने, कैसी पड़े, कैसी न पड़े। मैं जल्दी से बाहर आ गई।

देवकी के इस बयान से अदालत में सनसनी फैल गई। लोगों में धीरे धीरे बातें होने लगीं। कुछ लोग कहते थे, यह बयान अक्षरशः सत्य है; इस स्त्री ने अपनी लाज रख ली। कुछ कहते थे, भारतीय स्त्री ने अपने प्राण देकर पति को छुड़ा लिया है, नहीं तो हत्या का दोष इससे कोसों दूर है। रूपचन्द खड़े देखते थे और चुप थे। इस घटना ने उनकी बोलने की शक्ति नष्ट कर दी थी। जिस प्रकार सूरज की गरमी सरोवर का जल सुखा देती है, और उसका तला दिखाई देने लगता है, इसी प्रकार घोर निराशा ने रूपचन्द के हृदय की शान्ति नष्ट कर दी थी, और उनके हृदय के आंतरिक भाव दिखाई दे रहे थे—देवकी के लिए प्रतिक्षण रोते रहते थे, यह उनके हृदय की तय थी। वह अपनी ओर से भरसक यत्न कर रहे थे, परन्तु उनके किये कुछ बनता दिखाई न देता था। कैसा दुःख-पूर्ण दृश्य था, कि स्त्री मृत्यु के खुले मुँह में जा रही थी, और

पति सामने खड़ा मुँह तकता था, परन्तु कुछ कर न सकता था।

एक दिन बहुत रात गये मैं होटल गया। सब लोग अपने अपने कमरों में जाकर सो चुके थे। मैंने कपड़े उतारे, और लेट गया, परन्तु आँखों में नींद न थी। रह रह कर सोचता था, क्या सचमुच देवकी को फाँसी पर चढ़ना होगा। इस भय से देह के रोंगटे खड़े हो जाते थे, आँखों में पानी आ जाता था। सहसा साथ के कमरे से कुछ बातचीत की आवाज़ आई। इस समय क्या बात हो सकती है। कोई विशेष मामला होगा, कौतूहल-वश मैंने दीवार के साथ कान लगा दिये। मालूम हुआ, एक स्त्री और पुरुष बातें कर रहे हैं।

पुरुष ने पूछा—"तो अब तुम्हारा इरादा है कि नहीं। जो कुछ कहना हो साफ़ साफ़ कह दो। मुझे अब इक़रारों में न रखो। मैं चाहता हूँ, जितनी जल्दी हो सके, ब्याह हो जाय।"

स्त्री—"तुम थोड़े दिन धीरज क्यों नहीं धरते। अभी अभी मेरी बहन मरी है। ब्याह होते देखकर लोग क्या कहेंगे? ठठोलियाँ मारेंगे। शहर में रहना कठिन हो जाएगा।"

पुरुष—"लोगों की परवा न करो।"

स्त्री—"परवा कैसे न करूँ? शहर छोड़ कर कहाँ चली जाऊँगी?"

पुरुष—"बहन की मृत्यु का बड़ा दुःख है क्या?"

स्त्री—"तुम पुरुष हो। पुरुषों के हृदय कठोर होते हैं। परन्तु मैं तो स्त्री हूँ। ऐसी पत्थर-दिल कैसे हो जाऊँ।"

पुरुष—"जिस तरह हत्या की थी।"

स्त्री—"चुप, कोई सुन लेगा।"

पुरुष—"हिन्दोस्तानी स्त्री मर रही है। कभी कभी तो मेरा दिल भी काँप जाता है।"

अन्धकार में आशा-किरण चमक गई। मैं कमरे से बाहर निकल आया। इस समय मैं ऐसा प्रसन्न था, कि आकाश पाताल की सुध न थी। भागा भागा पोलीस के थाने में जा पहुँचा।

दूसरे दिन वास्तविक अपराधिन अदालत में पेश हुई। मुक़द्दमे का रङ्ग एक बार फिर बदल गया। यह स्त्री लूसी की सगी बहन थी। पहले पहले उसने अपने बचाव का बहुत यत्न किया, परन्तु अन्त में पोलीस और अदालत के हथकंडों में आ गई। क़ानून के फ़ौलादी पञ्जों ने उस अभागी को भागने का अवसर न दिया। उसने अपने बयान में अपने अपराध को स्वीकार किया। कहा, कि हम दोनों बहनें रूपचन्द को चाहती थीं। पहले पहल मुझे यह पता न था, कि मेरी बहन को भी रूपचन्द से प्रेम है। कुछ देर बाद जब यह भेद मुझ पर खुला तो मैं बफरी हुई शेरनी की नाईं क्रोध में भर गई, और छोटी बहन से बोली, तू इस हिन्दोस्तानी पादरी का ख़याल छोड़ दे,

नहीं तो मैं तेरी बोटियाँ नोच लूँगी। परन्तु लूसी पर मेरी धमकी का कोई असर न हुआ। पागल और प्रेमी ने किसी की शिक्षा कब मानी है? परिणाम यह हुआ, कि एक दिन अवसर पाकर मैंने उसे उस हिन्दोस्तानी के झोपड़े में मार डाला।"

देवकी छूट गई, और उस स्त्री पर मुक़द्दमा चलने लगा। मैंने एक दिन उससे भेंट करने की आज्ञा लेकर पूछा, "क्या मैं एक प्रश्न पूछ सकता हूँ?"

"क्या मुक़द्दमे के सम्बन्ध में?"

"नहीं उसका मुक़द्दमे से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं।"

"पूछिए।"

"आप दोनों बहनों को उस हिन्दोस्तानी संन्यासी से प्रेम था। क्या वह संन्यासी भी तुममें से किसी एक को चाहता था?"

मालूम होता है, इस प्रश्न से इसके हृदय के घाव हरे हो गये, सिर झुका कर बोली, "बिलकुल नहीं। वह हम दोनों में से किसी की भी परवा नहीं करता था। यही कारण है, कि मैंने अपनी बहन को उसके झोंपड़े में जाकर उसी की छुरी से मारा। और इससे मेरा प्रयोजन एक ही वार से दोनों शत्रुओं का अन्त कर डालना था। परन्तु भाग्य में यह बदा है, इसका पता न था।"

ऐ भाई ! मेरे हृदय का बोझ हलका हो गया, जैसे किसी का ज्वर उतर जाए। मैं रूपचन्द के झोंपड़े में पहुँचा। वहाँ रूपचन्द मेरी बाट देख रहे थे। मुझे देखते ही उन्होंने अपनी भुजाएँ फैला दीं। यह भुजाएँ मेरे लिए वैकुण्ठ-द्वार से कम न थीं। मैं गद्‌गद हो गया। मैं समझता था, मनुष्य-जन्म लेना आज सार्थक हुआ। चारों ओर उछलता फिरता था। मुझे यह परवा न थी, कि कोई देखेगा तो क्या कहेगा। मैं अपने पागलपन को स्वयं प्रकट करना चाहता था। थोड़ी देर के बाद आराम से बैठे, तो मैंने कहा—"आपने हमें तो भुला ही दिया। मुँह देखने को जी तरस गया।"

रूपचन्द ने आकाश की ओर देखकर ठण्डी साँस भरी और उत्तर दिया, भगवान् की यही इच्छा थी, तो क्या हो सकता है ? अब तो यह कुटिया मन में बस गई।

"तो क्या आप वापस न चलेंगे ?"

"विचार तो ऐसा ही है।"

"और बिचारी देवकी का क्या बनेगा ?"

"उस पापिन का मेरे सामने नाम न लो।"

"यह आप क्या कह रहे हैं ?"

"उसका नाम सुनकर मेरा हृदय जलने लगता है। उसने अपनी मर्यादा पर पानी फेर दिया। वह स्त्री नहीं, कुटिला है।"

मैंने जोश से कहा, "आपको बचाने के लिए उसने अपने आपको जोखिम में डाल दिया था।"

"यह सब सच है। पर पाप का दाग़ हृदय-रक्त से भी नहीं मिटता।"

"तो आपके हृदय में गिरह बँध गई?"

"और ऐसी जो कभी न खुलेगी। तुम अब इस विषय में अधिक बात-चीत न करो। इससे मेरे आत्मा को क्लेश होता है।"

"परन्तु देवकी निर्दोषी है।"

रूपचन्द ने उत्तर न दिया। उनके मुख पर से जान पड़ता था, कि इससे उनके हृदय पर कुछ प्रभाव नहीं हुआ। परन्तु मैंने सारी घटना उनके सामने खोल दी, और अपनी भूल स्वीकार की। तब उनके मुख का रङ्ग बदल गया। आँखों में आँसू लहराने लगे, कड़ी धूप के पश्चात् मीठे जल की वृष्टि हुई। रोते रोते बोले, "हरिसेन! तब मैंने उससे सरासर अन्याय किया। वह दो तीन बार यहाँ आई थी, परन्तु मैंने झिड़क दिया। पता नहीं उस समय अपने मन में क्या कहती होगी। अब मेरे हृदय में उसके विषय में रत्ती भर भी शङ्का नहीं। मैं उसे अपराधिनी समझता था, परन्तु यह विचार न था, कि अपराध मेरा ही है। चलो, मैं उससे क्षमा माँगूँगा।"

हम दोनों चलने को तैयार हुए। इतने में देवकी सामने से आती दिखाई दी। उसे देख कर हठात् मेरे आँसू निकल पड़े। वह ऐसी दुबली-पतली हो गई थी, जैसे शिशिर ऋतु में फूल की शाखा सूख जाती है। रूपचन्द ने उसे देखते ही बाँहें

फैला दीं। देवकी हर्ष से उन्मत्त होकर आगे बढ़ी, परन्तु पैरों में गिर कर मूर्छित हो गई। पण्डितजी ने उसे उठाकर गले से लगा लिया, और रोने लगे। यह आँसू आनन्द के भी थे, दुःख के भी; अभिमान के भी, लज्जा के भी।

उस रात रूपचन्द की कुटिया, "आनन्द-भवन" का कुछ और ही रङ्ग था। चारों ओर आनन्द बरस रहा था, हम सब को गई हुई शान्ति मिल गई थी। मैं वहाँ कुछ दिन ठहरा। उन दिनों की सुख-स्मृति अब भी हृदय में हलचल मचा देती है। ऐ भाई! मैंने कई शहर देखे हैं और कई शहर देखूँगा, परन्तु जो सुख-संगीत जो स्वर्गोपम मोहनी जो आध्यात्मिक माधुरी उस "आनन्द-भवन" में थी वह न कहीं और मिली है न मिलेगी। वहाँ प्रेम का पवन चलता था, स्नेह के फूल खिलते थे। देवकी और रूपचन्द के पवित्र भावों ने मेरे जैसे विलासी, स्वार्थी, कपटी, कामी पुरुष का हृदय-परिवर्तन कर दिया। मानो यह सारी घटना मेरे "**परिवर्तन**" ही के लिए थी। अब वह वहाँ नहीं, भारत चले गये हैं, और कश्मीर में वैरी नाग स्रोत के तट पर रहते हैं। वहाँ भी उन्होंने एक कुटिया बना ली है, और उसका नाम भी "आनन्द-भवन" ही रक्खा है। मेरे भारत जाने का हेतु वही कुटिया है। मैं उसके दृश्य देखने के लिए इस प्रकार तड़प रहा हूँ, जिस प्रकार मछली जल के लिए तड़पती है। मैंने अपनी जन्मभूमि आज तक नहीं देखी। परन्तु माता कितने प्यार, कितने आदर, कितने

अभिमान की वस्तु है, इसे अनुभव करता हूँ। वही मातृ-भूमि जिसमें मेरे बाप-दादा उत्पन्न हुए, खेले, बुड्ढे हुए, मर गये। वही धरती, जहाँ मदनमोहन ने बाँसुरी बजाई, पशु चराये और बाल-क्रीड़ा की; राम ने बाण चलाये और राक्षसों से पृथ्वी साफ़ की। आज मैं उसी धरती के दर्शन करने जाता हूँ। आज भूला हुआ बालक अपनी माता के चरणों में सिर रखकर रोने चला है। मैं समझता हूँ मेरी जन्म-भूमि बड़ी पवित्र, बड़ी रमणीक, बड़ी सुन्दर और शस्यश्यामला होगी। परन्तु मैं जब इन सारे गुणों को एक स्थान पर इकट्ठा करता हूँ, तो मेरे सामने "आनन्द-भवन" का चित्र आ जाता है। मेरी कल्पना इससे परे नहीं जा सकती।

(१५)

यह कहते कहते हरिसेन ने सिर झुका लिया। नादान युवक के हृदय में जन्म-भूमि का प्रेम किस प्रकार उत्पन्न होता है, यह मैंने पहली बार जाना। बाहर सुनील महासागर गरज रहा था, अन्दर मेरे हृदय में सहस्रों विचार-तरंगें उठ रही थीं। इन विचारों ने मेरा मुँह बन्द कर दिया। मैं कुछ देर अवाक् बैठा रहा। इसके पश्चात् सिर उठा कर हरिसेन की ओर देखा। इस समय वह मुझे कितना अपने निकट, कितना अपने समीप दिखाई देता था। मैंने प्रेम भरे स्वर से कहा, "हरिसेन!"